द्वितीय अध्याय

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

विद्यापति एवं शंकरदेव क्रमशः हिन्दी और असमीया साहित्य के दो अन्यतम हस्ताक्षर हैं। इनकी रचनाओं पर तुलनात्मक अध्ययन करने से पूर्व इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में इन दो महान साहित्यिक विभूतियों के जीवन सम्बंधी बातों को निम्नलिखित दृष्टियों से देखने का प्रयास किया गया है–

2.1. विद्यापति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.2 शंकरदेव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.1. विद्यापति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.1.1. विद्यापति का व्यक्तित्व

2.1.1.1. जन्म एवं माता-पिताः

प्राचीनकाल के कवि, साहित्यकार तथा मनीषियों के जीवन सम्बंधी बातों की सठीक जानकारी प्राप्त होना अति दुरूह कार्य रहा है। क्योंकि इनमें से अधिकतर ही आत्मप्रचार विमुख रहे। विद्यापति भी इनकी परिधि से बाहर नहीं जान पड़ते। फिर भी अन्य कवियों की अपेक्षा विद्यापति की रचनाओं से प्राप्त सामग्री, अन्य समसामयिक कवियों की रचनाओं से प्राप्त सामग्री और ताम्रपत्रों के आधार पर विद्यापति के जीवन सम्बंधी काफ़ी बातों पर प्रकाश पड़ता है।

इन्हीं अंतःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के आधार पर ही विद्यापति का जन्म स्थान 'विसपी ग्राम' में माना जाता है। पहले इसका नाम 'गढ़ विसपी' था। यह ग्राम मिथिला के दरभंगा जिले के अंतर्गत जरैल परगना में है और कमतौल रेलवे स्टेशन से चार मील की दूरी पर स्थित है। प्रसिद्ध है कि यह ग्राम मिथिला

के तत्कालीन राजा शिवसिंह ने अपने राज्याभिषेक के सुअवसर पर विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' की उपाधि सहित भेंट किया था।

'जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' में छपे एक दानपत्र द्वारा इस कथन का सत्यापन होता है-

श्रामच्छिवसिंहदेवपादाः समरविजयिनो जरैल तप्यामां सकललोकान् भूकषश्चिं ज्ञातमस्तु भवताम्। ग्रामोतयमस्यभिः सप्रक्रिया अभिनव जयदेव महाराजपंडितठक्कुर श्री विद्यापतिभ्यः शासनीकृत प्रदत्त॥ (शील 2007:01)

इसके अलावा विद्यापति के स्वरचित पद से भी इस बात की पुष्टि होती है, जो इस प्रकार है-

पंचगौड़ाधिप शिवसिंह भूपकृपाकरि लेल निज पास।
विसपीग्राम दान कएल मोहि रहमत राज सनिधान॥ (दीक्षितः 9)

विद्यापति के जन्मकाल को लेकर विद्वानों में काफ़ी मतभेद रहा है।

डॉ. उमेश मिश्र के अनुसार-

इनके पिता गणपति ठाकुर राजा गणेश्वर सिंह के राज सभासद थे। महाराज गणेश्वर की मृत्यु 252 लक्ष्मण संवत् में हुई थी, अतः विद्यापति उस समय अंततः 10 या 11 वर्ष के अवश्य रहे होंगे, जिससे उनका राजदरबार में आना-जाना हो सकता था। दूसरी बात यह है कि विद्यापति के प्रधान आश्रयदाता शिवसिंह का जन्म 253 लक्ष्मण संवत् में हुआ और वे 50 वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे थे। यह माना जाता है और यह भी लोगों की धारणा रही है कि कवि विद्यापति उनसे दो वर्ष मात्र बड़े थे। तीसरी बात यह है कि विद्यापति ने कीर्तिलता में अपने को 'खेलन कवि' कहा है। इसलिए यह अवश्य कीर्तिसिंह या वीरसिंह की दृष्टि में अल्पवयस के साथ खेलने के लायक रहे होंगे। इन सभी बातों से आभास होता है कि विद्यापति 252 लक्ष्मण संवत् में 10 या 11 वर्ष के थे। (दीक्षितः9/10)

इस प्रकार डॉ. उमेश मिश्र के अनुसार-विद्यापति का जन्म 241 लक्ष्मण संवत् अर्थात् लगभग सन् 1360 ई. ठहरता है।

इसी प्रकार अन्य कुछ विद्वानों, जैसे- नगेंद्रनाथ गुप्त ने विद्यापति का जन्म सन् 1358 ई., हरप्रसाद शास्त्री ने सन् 1357 ई., रामवृक्ष बेनीपुरी ने सन् 1350 ई., बाबुराम सक्सेना ने सन् 1357-1359 के बीच, शिवनंदन ठाकुर, रामनाथ झा तथा जयकांत मिश्र ने सन् 1360 ई. को माना हैं।

विद्यापति द्वारा रचित एक पद्यांश उल्लेखनीय है, जो उनके सही जन्मकाल निर्णय में सहायक सिद्ध होता है-

अनल रंध्र कर लक्खन नरवइ सक समुद्द कर आगनि ससी।
चैत करि छठि जेठा मिलिश्रो बार बेहप्पय जाहु लसी॥
देवसिंह जू पुहुमि छड्डिअ अद्धासन् सुरराअ सरू। (बेनीपुरी 2011:12)

प्रस्तुत पद्यांश की व्याख्या करते हुए डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित ने कहा है-

प्राचीन परिपाटी पर किये गये अर्थ से पता चलता है कि लक्ष्मण संवत् 293 शाके 1324 अर्थात् विक्रमी संवत् 1459 में (1412-13 ई.) में देवसिंह का स्वर्गवास हुआ। देवसिंह की मृत्यु के पश्चात राजा शिवसिंह गद्दी पर बैठे। मिथिला में प्रचलित एक जनश्रुति के अनुसार राजा शिवसिंह जिस समय सिंहासन्सीन हुए उनकी अवस्था 50 वर्ष की थी और विद्यापति राजा शिवसिंह से दो वर्ष बड़े थे। इस प्रकार लक्ष्मण संवत् 293 में विद्यापति 52 वर्ष के रहे होंगे। फलतः उनका जन्म 241 लक्ष्मणाब्द (लगभग 1360-61 ई.) ठहरता है। (दीक्षितः 10)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवि विद्यापति का जन्म काल सन् 1360 ई. या उसके आस-पास ही निश्चित होता है। अधिकांश विद्वानों ने भी इसी को मान्य घोषित किया है।

कवि विद्यापति के पिता का नाम गणपति ठाकुर और उनकी माता का नाम हंसिनी देवी था। गणपति ठाकुर स्वयं संस्कृत के विद्वान थे और वे विख्यात संत जयदत्त के सुपुत्र थे। कहा जाता है कि गणपति ठाकुर ने कपिलेश्वर महादेव की आराधना करके विद्यापति जैसा पुत्र रत्न प्राप्त किया था।

2.1.1.2. वंश परिचयः

विद्यापति के वंश तथा पूर्वजों का पता तत्कालीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों और पंजी प्रबंधों से मिलता है। विद्यापति मैथिल ब्राह्मण थे और इनका मूल बिसइबार वंश था। विद्यापति के पूर्वज विद्वान थे, जिन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। साथ ही उनके वंश के लोग मिथिला के राज दरबार में उच्च-पदों पर आसीन थे। कोई राजमंत्री थे, तो कोई राजपंडित थे। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर स्वयं राजमंत्री होने के साथ-साथ 'गंगभक्ति तरंगिनी' जैसे कृति की भी रचना कर गये हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने विद्यापति के वंश के संदर्भ में कहा है-

यों देखा जाता है कि विद्यापति का ख़ानदान ही सरस्वती का अपूर्व कृपापात्र रहा है। जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने राज्यकर्म में अपनी चातुरी दिखलाई थी, उसीप्रकार सरस्वती सेवा में भी वे लोग पीछे नहीं रहे हैं। इसी प्रतिभावान कुल में उत्पन्न होकर विद्यापति ने जो कुछ काव्य-कुशलता दिखलाई है, वह स्वाभाविक ही है। (बेनीपुरी 2011:15)

सन् 1326 ई. में राजा हरिसिंह देव के आज्ञानुसार मिथिला में पंजी प्रथा की रचना की गई थी। 'बिसईबार वंशावली' का विवरण पंजी प्रबंध में निम्नलिखित अनुसार दिया गया है-

गढ़ विसपी सं। बीजी विष्णु शर्मा, विष्णु शर्मा सुतो हरादित्य, हरादित्य सुतः कर्मादित्य, कर्मादित्य सुतौ संधिविग्रहिक देवादित्य-राजबल्लभ भवादित्यौ, देवादित्य सुताः भाण्डागरिक-वीरेश्वर, वार्तिक नैबसंधिक धीरेश्वर, महामत्तक गणेश्वर, भाण्डागरिक जठेश्वर, स्थानन्तरिक-हरदत्त, मुद्राहस्तक-लक्ष्मीदत्त, राजवल्लभ-शुभादतः भिन्न मात्रिका। (मिश्र एवं मजुमदार 1951:6)

उपर्युक्त विवरण के साथ तादात्म्य रखते हुए डॉ. शुभकार कपूर द्वारा वर्णित विद्यापति के बिसईबार वंशावली को इस प्रकार देखा जा सकता हैं-

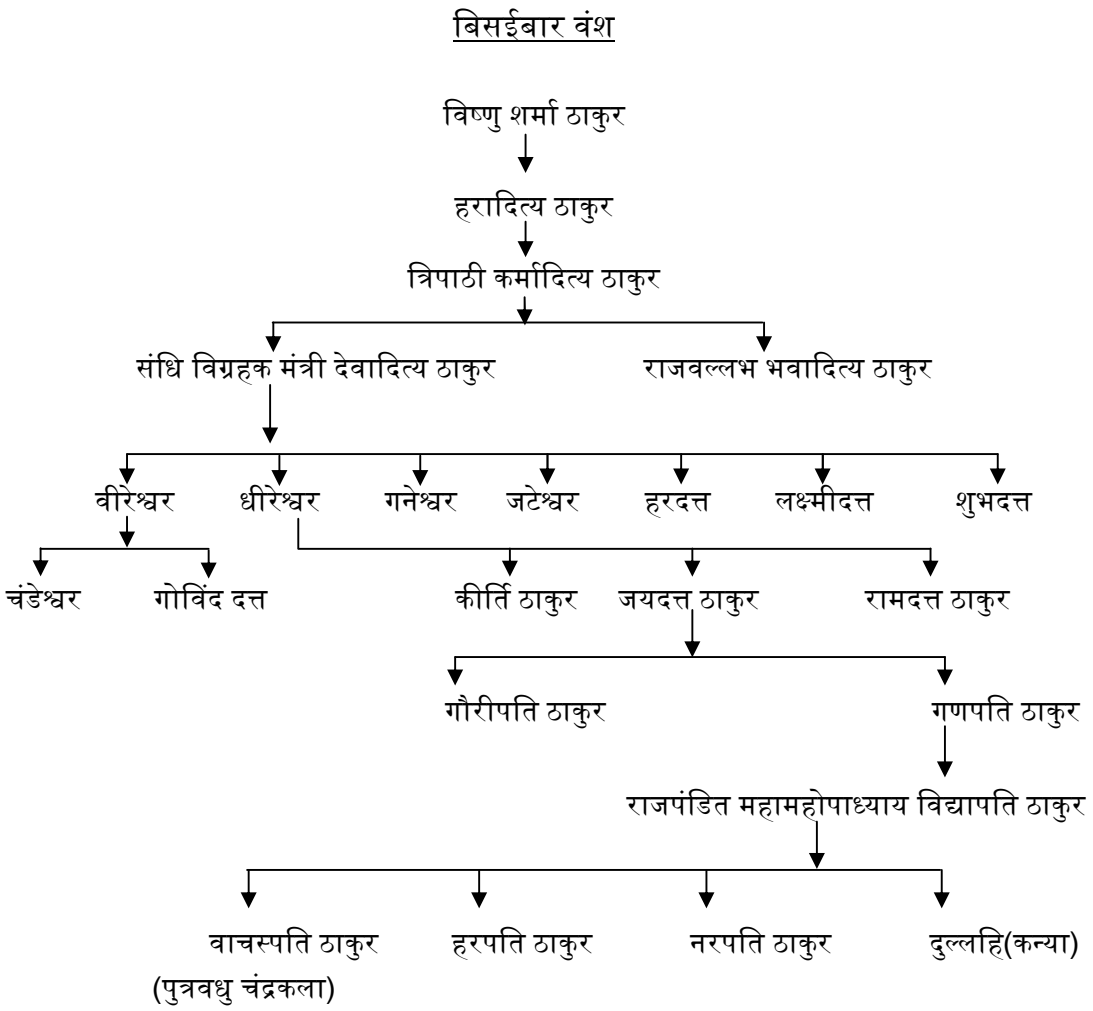

(कपूर 1968:28)

2.1.1.3. शिक्षा-दीक्षा एवं गुरुः

बचपन से ही विद्यापति कुशाग्र बुद्धि के थे। कवि विद्यापति ने मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्वान हरिमिश्र से विद्याध्ययन किया था। जयदेव मिश्र जैसे परम विद्वान विद्यापति के सहपाठी थे। विद्यापति ने न्यायशास्त्र की शिक्षा अपने सहपाठी एवं मित्र जयदेव मिश्र से ली थी। साहित्य के साथ ही आपने वेद-पुराणादि, धर्म ग्रंथों, दर्शन, संगीत, ज्योतिष शास्त्र आदि का अध्ययन कर अपने पांडित्य का प्रदर्शन किया। संस्कृत, अवहट्ट

और मैथिली भाषा में अपनी ख्याति चिरकाल तक छोड़नेवाले कवि विद्यापति बहुभाषाविद तथा एक विदग्ध विद्वान थे।

2.1.1.4. कर्म-जीवनः

मैथिल कोकिल विद्यापति का कर्म जीवन मूलतः मिथिला के राजाश्रय में ही बीता। भिन्न स्त्रोतों, ग्रंथों से पता चलता है कि विद्यापति ने राज दरबार में रहकर ही अपना अधिकांश जीवन व्यतीत किया। मिथिला नरेशों के आश्रय में रहकर ही विद्यापति अपनी रचनाओं का सर्जन करते रहे। बचपन में ही अपने पिता गणपति ठाकुर के साथ राजा गणेश्वर के दरबार में जाया करते थे। गणेश्वर की मृत्यु होने पर कीर्तिसिंह गद्दी पर बैठे। विद्यापति ने अपनी रचना 'कीर्तिलता' लिखकर कीर्तिसिंह के सामने पेश कीया और अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसी से मुग्ध होकर कीर्तिसिंह ने विद्यापति को 'खेलन कवि' कहकर अभिहित किया। मिथिला के राजवंश के उत्थान-पतन से जुड़े रहनेवाले विद्यापति ने अपनी रचना कीर्तिलता में ओईनवार राजवंश (राजा शिवसिंह का वंश) की कीर्ति का उल्लेख किया है। देवसिंह के सान्निध्य में रहकर कवि ने भूपरिक्रमा की रचना की। देवसिंह को कवि विद्यापति 'नागर' कहकर सम्बोधित करते थे। देवसिंह के बाद उनके दो पुत्रों-शिवसिंह और पद्मसिंह में से शिवसिंह राजा हुए। यद्यपि विद्यापति कई राजाओं के आश्रयदाता के रूप में रहे, किंतु मूलतः शिवसिंह और उनकी पटरानी लखिमादेइ का उनके जीवन पर अत्यधिक प्रभाव रहा। राजा शिवसिंह विद्यापति के परम सखा, मित्र और उनके कविता कामिनी के प्रेरक थे। शिवसिंह के शासनकाल में विद्यापति की काव्य-कला चरमोत्कर्ष पर पहुँची, जिस कारण विद्यापति ने राजा की असीम कृपा प्राप्त की। रानी लखिमादेइ भी एक विदुषी महिला थी। अतः 'ज्ञानी को होती है गुणी की पहचान' कथन सिद्ध होने की तरह राजा और रानी दोनों के साथ विद्यापति का घनिष्ठ संपर्क रहा। एक बार यवनों ने आक्रमण कर जब शिवसिंह को क़ैद कर लिया था, तब विद्यापति अपने प्रिय आश्रयदाता को शत्रुओं के चंगुल से मुक्त कराने हेतु दिल्ली पहुँचे। वहाँ बादशाह को अपनी प्रतिभा से प्रसन्न कर वे शिवसिंह को मुक्त करा लाते हैं। विद्यापति ने राजाश्रय में रहकर ही शैवसर्वस्वसार, पुरुष-परीक्षा, गंगा वाक्यावली,

दुर्गाभक्ति तरंगिनी इत्यादि अनुपम कृतियों की रचना की। अनेक राजाओं के संस्पर्श में रहकर अंत में भैरवसिंह के शासनकाल के बाद विद्यापति की मृत्यु होती है।

इस प्रकार विद्यापति का अधिकांश जीवन मिथिला के अन्यान्य राजाओं के आश्रय में रहकर ही बीता। राजाश्रित रहकर ही कवि विद्यापति ने धर्म, वीरता, मनोरंजन के साथ सामाजिक पक्ष को भी अपनी साहित्यिक कार्यों के माध्यम से प्रकाशित किया। विद्यापति की एक खासियत थी कि-वे जिस किसी व्यक्ति के साथ घनिष्ठ हुए, उसी को अपनी रचना के माध्यम से अमरत्व प्रदान कर गये। विद्यापति की मित्रमंडली में सभी सम्प्रदाय के लोग रहते थे-चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। इन्हीं गुणों के कारण विद्यापति को राज दरबारों में रहकर ही धन, सम्पत्ति, यश तथा सम्मान की प्राप्ति होती रही।

2.1.1.5. विवाह एवं परिवारः

विविध स्त्रोतों, जनश्रुतियों एवं अनुसंधानवेताओं के आधार पर आधारित विद्यापति के वैवाहिक जीवन के संदर्भ में यह मान्यता रही है कि उनका विवाह चंपत्ति देवी या चंदन देवी से हुआ था, जिससे उनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी। जिनके नाम क्रमशः- वाचस्पति ठाकुर (पुत्र), हरपति ठाकुर (पुत्र), नरपति ठाकुर (पुत्र) और दुल्लहि (पुत्री) हैं। नरपति ठाकुर ज्योतिष शास्त्र के परम विद्वान माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित ज्योतिष शास्त्र सम्बंधी ग्रंथ का नाम है- 'दैवज्ञ बांधव'। मैथिली भाषा में रचित इनकी कुछ कविताएँ भी उपलब्ध हैं। कुछ तथ्य के अनुसार ज्ञात होता है कि विद्यापति की पुत्रवधू चंद्रकला भी महापंडित थी और कविताएँ करती थी। विद्वान वंश परंपरा में जन्मे विद्यापति का वैवाहिक तथा पारिवारिक जीवन सुखमय ही व्यतीत हुआ। विद्यापति की दो पत्नियाँ होने का भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है, परंतु पुष्ट प्रमाण का अभाव होने हेतु यह निश्चित नहीं हो पाया है। यद्यपि विद्वान पुत्र, विदुषी पुत्रवधू ने परवर्ती समय में अपनी काव्य-कौशल और प्रतिभा से वंश की ख्याति अक्षुण्ण बनाए रखा।

2.1.1.6. उपाधियाँ:

विद्यापति की अद्‌भुत काव्य प्रतिभा के कारण उनके आश्रयदाता राजाओं तथा प्रशंसकों आदि ने उन्हें कई उपाधियों से विभूषित किया है। कम उम्र में ही कीर्तिलता की रचना से मुग्ध होकर राजा कीर्तिसिंह के द्वारा विद्यापति 'खेलन कवि' के नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा शिवसिंह ने 'अभिनव जयदेव' की उपाधि दी, जो सर्वप्रसिद्ध है। इन उपाधियों के अतिरिक्त राजपंडित, सुकवि कंठाहार, कविरत्न, कवि शेखर, कविरंजन, दशावधान, मैथिल कोकिल इत्यादि नाम से वे सर्वप्रसिद्ध हैं। अतः विद्यापति हिन्दी साहित्य का एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं, जिन्हें अपने अनुपम तथा उत्कृष्ट काव्य कौशल के कारण इतनी उपाधियाँ व सम्मान प्राप्त हुए।

2.1.1.7. मृत्युः

जन्म की भाँति विद्यापति की मृत्यु को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। जन्म काल की तरह मृत्यु काल का अनुमान भी शिवसिंह की मृत्यु के साथ जोड़कर ही विद्वानों द्वारा लगाया जाता है।

पंडित शिवनंदन ठाकुर ने विद्यापति के देहावसान की तिथि कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी लक्ष्मण संवत् 329 (सन् 1448 ई.) मानी है। अपने इस कथन की पुष्टि में वे कहते हैं-

लक्ष्मण संवत् 239 (सन् 1412 ई.) में शिवसिंह का राज्याभिषेक हुआ। वह चैत्र का महीना था। शिवसिंह ने तीन वर्ष और नौ महीने तक राज्य किया अर्थात् लक्ष्मण संवत् 296 (सन् 1415 ई.) के पूस महीने कत शिवसिंह राजा थे। उनकी मृत्यु 32 वर्ष बाद अर्थात् लक्ष्मण संवत् 328 (सन् 1447 ई.) के माघ या फाल्गुन में विद्यापति ने शिवसिंह को स्वप्न में देखा। जिन पुराणों में यह भी बतलाया गया है कि उन स्वप्नों के फल बताए गये हैं, उन पुराणों में यह भी बतलाया गया है कि उन स्वप्नों का फल कब मिलता है। (शील 2007:3)

स्वयं कवि विद्यापति ने राजा शिवसिंह की मृत्यु (1415 ई.) के 32 वर्ष बाद देखे स्वप्न के संदर्भ में लिखा है-

सपन देखल हम सिवसिंह भूप ।
बतिस बरस पर सामर रूप ।।
पुनि देखल गुरुजन प्राचीन ।
आव भेलहुँ हम आयु विहीन ।।
सिमटु सिमटु निअ लोचन नीर ।
ककरहु काल न राखथि थीर ।।
विद्यापति सुगतिक प्रस्ताव ।
त्याग के करुना रसक सुभाव ।। (बेनीपुरी 2011:25)

उपरोक्त पद के साथ संगति रखते हुए रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है-

ऐसी प्राचीन धारणा है, कि बहुत दिनों पर यदि अपना कोई मृत प्रेम पात्र मलिन वर्ष में दीख पड़े, तो मृत्यु निकट समझनी चाहिए। यही भाव बड़े ही कारुणिक शब्दों में उपयुक्त पद में वर्णन किया है। (बेनीपुरी 2011:25)

विद्यापति की मृत्यु के विषय में एक पद्यांश बहुप्रचलित है, जो इस प्रकार है-

कातिक धवल त्रयोदसि जान ।
विद्यापतिक आयु अवसान ।। (शील 2007:4)

इस आधार पर कवि विद्यापति की मृत्यु तिथि कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी 328-329 लक्ष्मण संवत् (1447 ई.-1448 ई.) के आसपास धार्य की जा सकती है।

विद्यापति की मृत्यु के साथ जुड़ी प्रचलित किंवदंती के अनुसार-अपना अंत समय निकट जानकर विद्यापति गंगा सेवन के लिए घर से विदा लेकर निकल पड़ते हैं। रात हो जाने पर गंगा से दो कोस दूर रहने पर अपनी पालकी रुकवा दी और अभिमानी भक्त की तरह कहने लगे, जो इस प्रकार है कि-

मैं इतनी दूर से मैया के निकट आया, क्या मैया मेरे लिए दो कोस आगे नहीं बढ़ आवेगी? रात बीती। दूसरे दिन लोग इस दृश्य को देखकर चकित रह गये कि गंगा अपनी धारा छोड़, कोस की दूरी पर पहुँच गई थी। अभी तक उस स्थान पर गंगा की धारा टेढ़ी नजर आती है। (बेनीपुरी 2011:26)

यह घाट मुजफ्फरपुर जिले में है। विद्यापति की मृत्यु के बाद उस स्थान पर एक शिव मंदिर की स्थापना की गई, जो आज भी विद्यापति की स्मृति सजीव करता है।

2.1.2. विद्यापति का कृतित्वः

साहित्यकार को प्रसिद्ध तथा अमर बनाती है उनकी कृतियाँ। हिन्दी साहित्य के मैथिल कोकिल नाम से प्रसिद्ध कवि विद्यापति पूर्वजों के संस्कार, वातावरण और अध्यवसाय के कारण साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए। संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में अपनी अमूल्य कृतियों की रचना करनेवाले विद्यापति असाधारण प्रतिभामण्डित तथा बहुभाषाविद थे। तत्कालीन समय में भारत में संस्कृत का स्थान अक्षुण्ण तथा प्रमुख था। किंतु विद्यापति ने 'देसिल बअना सब जन मिथ्या' कहकर लोकभाषा में काव्य रचना की और तत्कालीन साहित्यकारों को लोकभाषा के प्रति आकर्षित कर एक नई दिशा दी। लोकभाषा के प्रति अवहेलना की दृष्टि को विद्यापति ने विपरीत दिशा देते हुए यह दिखाने का प्रयास किया कि सामान्य जनता को लोकभाषा में लिखित साहित्य ही आकृष्ट करता है। इस प्रकार भिन्न भाषाओं में साहित्य रचनाएँ कर विद्यापति ने भारतीय साहित्य के भंडार में श्रीवृद्धि की। मूलतः विद्यापति के कृतित्व को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

2.1.2.1. संस्कृत रचनाएँ

2.1.2.2. अवहट्ट रचनाएँ

2.1.2.3. मैथिली रचनाएँ

इन तीन प्रकारों के अंतर्गत आनेवाली रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है-

2.1.2.1. संस्कृत रचनाएँ:

संस्कृत में रचित रचनाओं को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद मिलता है। डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित के अनुसार विद्यापति की संस्कृत में कुल ग्यारह (11) रचनाएँ हैं। किंतु बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना द्वारा

प्रकाशित 'विद्यापति पदावली' प्रथम भाग में संस्कृत के तेरह (13) ग्रंथों का उल्लेख मिलता हैं। अतः यहाँ विद्यापति द्वारा रचित संस्कृत के तेरह (13) ग्रंथों का परिचय प्रस्तुत किया गया है-

2.1.2.1.1. भूपरिक्रमाः

संस्कृत में रचित प्रस्तुत ग्रंथ की रचना देवसिंह के आज्ञानुसार हुई थी। भूपरिक्रमा पौराणिक कथा पर आधारित रचना है। बलराम के शापित हो जाने पर पाप का प्रायश्चित्य करने के लिए महर्षि धौम्य के कहे अनुसार भूपरिक्रमा करने का वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। विभिन्न तीर्थ स्थानों पर भ्रमण वर्णन के साथ-साथ ग्रंथ में कहानियों का भी रोचक वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में विद्यापति ने लिखा है-

पंचषष्टिदेशयुतां पंचषष्टि कथान्विताम ।
खण्डसमायुक्तामाह विद्यापतिः कविः ।। (यादव:16)

अर्थात् पैसठ देशों और पैसठ कथाओं से युक्त चार खण्डों में विभाजित भूपरिक्रमा का कवि विद्यापति ने कथन किया। प्रस्तुत रचना से विद्यापति की तीर्थों में आस्था के साथ उनकी वर्णन कुशलता का भी आभास होता है।

2.1.2.1.2. पुरुष परीक्षाः

संस्कृत में रचित इस ग्रंथ की रचना मुख्यत किशोर युवकों को नीति-विषयक ज्ञान प्रदान हेतु की गई थी। साथ ही काम-कला में कौतुक रखनेवाली नागर स्त्रियों को आनंद देने हेतु इसकी रचना राजा शिवशिंह के प्रेरणा से विद्यापति ने की थी। यह ग्रंथ पंचतंत्र की परंपरा में आती है। पर इसमें ऐतिहासिक पुरुषों की कथाएँ हैं, जो पंचतंत्र से मेल नहीं खातीं। कुल मिलाकर पुरुष परीक्षा में कथा सुनियोजित तथा भाषा और शैली में प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं।

2.1.2.1.3. लिखनावलीः

कुल चौरासी पत्रों में लिखित यह ग्रंथ विद्यापति ने संस्कृत भाषा में तत्कालीन राजबनौली के राजा पुरादित्य गिरिनारायण की आज्ञा से की थी। इस ग्रंथ का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। इसकी रचना नवसाक्षरों को पत्राचार शिक्षा देने हेतु हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है। लिखनावली में तत्कालीन मिथिला की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। राजघरानों के पत्र व्यवहार, आदेश निर्णय, इकरारनामा, दस्तावेज, आवेदन आदि को ही व्यवस्थित करके ग्रंथ रूप देकर सुव्यवस्थित करने का परिणाम ही है- लिखनावली।

2.1.2.1.4. शैव सर्वस्वसारः

महाराज पद्मसिंह की पत्नी महारानी विश्वासदेवी के आदेशानुसार विद्यापति ने संस्कृत में इस ग्रंथ की रचना की थी। ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण के श्लोक हैं और फिर भवसिंह, देवसिंह, शिवसिंह एवं पद्मसिंह का यशोगान किया है। साथ ही महारानी विश्वासदेवी के सम्बंध में भी कवि ने प्रशंसा की है। महाराज पद्मसिंह के दिवंगत होने के पश्चात संपूर्ण मिथिला राज्य का शासनभार विश्वासदेवी के कंधों पर आ पड़ा। महारानी विश्वासदेवी ने निष्ठा से राज्य संचालन किया। महारानी भगवान शिव के प्रति एकनिष्ठ भक्तिभाव रखती थी। स्वयं कवि विद्यापति भी शिवभक्त थे। अतः प्रस्तुत ग्रंथ में शिव पूजा सम्बंधी विधि-विधान का भी वर्णन कवि विद्यापति ने सविस्तार प्रस्तुत किया है। इसकी प्रति दरभंगा राज्य पुस्तकालय में मौजूद है।

2.1.2.1.5. शैवसर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण संग्रहः

कवि विद्यापति ने संस्कृत में रचित इस ग्रंथ में शिव पूजा के संदर्भ में पौराणिक वचनों को एकत्रित कर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत ग्रंथ 'शैवसर्वस्वसार' से सम्बंधित है। यह ग्रंथ या तो उसके साथ रचना की गई

थी या बाद में। अक्सर कवि विद्यापति अपने पूर्व रचित ग्रंथों का उपयोग बाद की रचनाओं में करते थे। जैसे- 'भूपरिक्रमा' की सारी कथाएँ किंचित परिवर्तन करके ही विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा' में लिखी है।

2.1.2.1.6. गंगावाक्यावलीः

महारानी विश्वासदेवी के आज्ञानुसार ही कवि विद्यापति ने संस्कृत में इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में गंगा के स्मरण-कीर्तन से लेकर गंगा तट पर प्राण त्यागने तक के सारे विधि-विधानों का उल्लेख मिलता है। ग्रंथ के आरंभ तथा अंत में विश्वासदेवी का नामोल्लेख है। लेखक के रूप में विश्वासदेवी का ही नाम है, विद्यापति का नाम संपादक के रूप में आया है। महारानी विश्वासदेवी विदूषी महिला थी। कवि विद्यापति ने विश्वासदेवी के स्मृति शास्त्र एवं पुराण संबंधी ज्ञान की प्रशंसा की है। किंतु पुस्तक की भाषा व रचना शैली को देखते हुए लगता है कि गंगावाक्यावली विद्यापति की ही रचना है। इस बात की पुष्टि ग्रंथ में उल्लेखित प्रशस्ति से हो जाती है, जो इस प्रकार है-

> इति समस्तप्रक्रिया विराजमान दानदलित कल्पलता ।
> भिमानभवभक्ति भावित बहुमान महामहादेवी श्री
> मद विश्वास देवी विरचिता गंगावाक्यावली समाप्ता ।। (कपूर 1968:14)

स्वयं रानी ने यदि ग्रंथ की रचना की होती, तो यह प्रशस्ति नहीं लिखती। इससे यह निःसंदेह प्रमाणित होता है कि गंगावाक्यावली विद्यापति के द्वारा ही विरचित है। महारानी विश्वासदेवी का नाम सम्मान प्रकट करने के उद्देश्य से ही लिखा गया है।

2.1.2.1.7. विभागसारः

विद्यापति ने संस्कृत में रचित प्रस्तुत ग्रंथ की रचना महाराज नरसिंह दर्पनारायण के आदेशानुसार की थी। महाराज पद्मसिंह की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी विश्वासदेवी ने 12 वर्षों तक राज्यभार संभाला।

निःसंतान होने के कारण महारानी विश्वासदेवी ने पद्मसिंह के चचेरे भाई नरसिंह दर्पनारायण को दत्तक पुत्र बनाकर राज्य का शासनभार सौंपा। तत्कालीन मिथिला के दाय भाग तथा उत्तराधिकार सम्बंधी विधानों का प्रस्तुत ग्रंथ में उल्लेख किया गया है। साथ ही द्वादशविध पुत्र लक्षण निरूपण, अपुत्र धनाधिकारी-निरूपण, स्त्री-धन-विभाग-निरूपण आदि विषयों पर चर्चा की गई है। हिन्दू उत्तराधिकार के रूप में इसकी प्रामाणिकता वर्तमान में भी अक्षुण्ण है। प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से तत्कालीन मिथिला की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति दरभंगा में उपलब्ध है।

2.1.2.1.8. दान वाक्यावलीः

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना विद्यापति ने महाराज नरसिंह दर्पनारायण की पत्नी रानी धीरमती के आज्ञानुसार की थी। संस्कृत में रचित इस ग्रंथ में सभी प्रकार की दान की महिमा और विधि-विधान की व्याख्या की गई है। ग्रंथ के प्रारंभ में कवि विद्यापति ने रानी धीरमती की यशोगाथा का वर्णन किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में तत्कालीन समाज का चित्र उजागर होता है। साथ ही कवि ने इसमें लोकभाषा के शब्दों का संस्कृत में प्रयोग किया है, जिससे तत्कालीन शब्दों के बारे में जानकारी मिलती है। उस समय में प्रचलित वस्त्रों का भी संभेद यहाँ मिलता है। जैसे- सरोम वस्त्र, क्षोम वस्त्र, कौशेय वस्त्र, कृमिज्ञ वस्त्र, मृग लोमज वस्त्र, वृक्षत्वक संभव वस्त्र आदि।

2.1.2.1.9. दुर्गाभक्ति तरंगिनीः

संस्कृत में रचित प्रस्तुत ग्रंथ की रचना विद्यापति ने महाराज भैरवसिंह के आज्ञानुसार की थी। इस ग्रंथ का मूल विषय-प्रतिमा लक्षण, भगवती दुर्गा की पूजा-विधि तथा माहात्म्य का वर्णन है। ग्रंथ में नरसिंह के तीन पुत्रों-धीरसिंह, भैरवसिंह और रूपनारायण का उल्लेख मिलता है। मूलतः यह एक धर्म विषयक ग्रंथ है।

2.1.2.1.10. गयापत्तलकः

संस्कृत में रचित इस ग्रंथ में गया-श्राद्ध-सम्बंधी निर्देशों का वर्णन है। यह एक छोटी-सी पुस्तिका है, जिसका प्रारंभ भी मंगलाचरण श्लोक से नहीं हुआ है। ग्रंथ के अंत में विद्यापति के नाम का इस प्रकार उल्लेख मिलता है-

इति महामहोपाध्याय श्रीविद्यापतिकृतं गयापत्तलकम समाप्तम्। (कपूर 1968:15)

2.1.2.1.11. वर्षकृत्यः

संस्कृत में रचित प्रस्तुत ग्रंथ में वर्ष भर में होनेवाले सभी प्रकार के पर्वों का वर्णन किया गया है। 'गयापत्तलक' की भाँति इस ग्रंथ में भी मंगलाचरण नहीं है और न ही किसी राजा का नामोल्लेख मिलता है। केवल अष्टम दीपावली पूजा के संदर्भ में रूपनारायण का नामोल्लेख मिलता है। मिथिला में अनेक वर्षकृत्य मिलते हैं, किंतु विद्यापति रचित वर्षकृत्य अधिक प्रामाणिकता रखते हैं।

2.1.2.1.12. मणिमंजरीः

विद्यापति द्वारा रचित यह संस्कृत नाट्य शैली में रचित एक संक्षिप्त नाटिका है। इसमें राजा चंद्रसेन और मणिमंजरी की कथा का वर्णन है। अर्द्धनारीश्वर की वंदना से ग्रंथ का आरंभ होता है। ग्रंथ के अंत में विद्यापति का नामोल्लेख इस प्रकार है-

इति निष्कांताः सर्वे। मंजरी संगमो नामो चतुर्थोडङ्क।

महामहो ठाकुर श्री विद्यापति कृता मणि मंजरी समाप्त।। (कपूर 1968:16)

प्रस्तुत ग्रंथ की पाण्डुलिपि पटना विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

2.1.2.1.13. गोरक्ष विजयः

प्रस्तुत ग्रंथ एक गीतनाट्य है। इसका कथोपकथन संस्कृत तथा प्राकृत में और गीत मैथिली भाषा में रचित है। मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ की प्राचीन कथा के आधार पर इसकी रचना कवि ने की थी। इसकी रचना किसी राजा के आदेश व अनुरोध से नहीं हुई थी, क्योंकि ग्रंथ में इस प्रकार का उल्लेख कहीं नहीं है। इसकी भाषा प्रांजल तथा वर्णन शैली रोचक है।

2.1.2.2. अवहट्ट रचनाएँ:

अवहट्ट में विद्यापति ने दो ही रचनाएँ की हैं- 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका'। किंतु अवहट्ट और मैथिली में रचित रचनाओं के कारण ही विद्यापति की लोकप्रियता बढ़ी और अपना अन्यतम स्थान चिरकाल के लिए अक्षुण्ण बना गये। कीर्तिलता और कीर्तिपताका का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है-

2.1.2.2.1. कीर्तिलताः

अवहट्ट में लिखित कीर्तिलता विद्यापति की प्रमुख रचना है। प्रस्तुत ग्रंथ एक ऐतिहासिक चरित काव्य है। इसमें मूलतः महाराज कीर्तिसिंह के राज्याभिषेक, युद्धारोहण, युद्ध विजय आदि का वर्णन कर उनका यशोगान किया है। कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर को असलान नामक किसी यवन ने षड़यंत्र से मारकर मिथिला पर अपना अधिकार जमा लिया था। तब कीर्तिसिंह ने जोनपुर के सुल्तान इब्राहीम शाह की सहायता से पितृहत्या का बदला लेने के उद्देश्य से असलान को युद्ध में परास्त किया और मिथिला को मुक्त कर पुनः प्राप्त किया। इसी प्रसंग का वर्णन करते हुए कवि ने कीर्तिलता की रचना की। प्रस्तुत ग्रंथ चार पल्लवों में विभक्त है। प्रत्येक पल्लव के प्रारंभ में भृंगी प्रश्न करता है और भृंग उसका उत्तर देता है। इसी प्रकार भृंग और भृंगी के कथोपकथन के कारण काव्य में अत्यन्त रोचकता का समावेश हुआ है। ग्रंथ में कीर्तिसिंह की वीरता, दानशीलता, शासन्-कुशलता आदि का वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है। किंतु साथ ही तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र विद्यापति ने सजीव रूप में किया है। जब दो भिन्न सभ्यता के बीच

आक्रमण होता है, तो किस प्रकार समाज पर उसका कुत्सित प्रभाव पड़ता है, उसका नग्न चित्र कवि विद्यापति ने ग्रंथ में वर्णन किया है। कीर्तिलता को विद्यापति की प्रथम रचना मानने की भूल विभिन्न विद्वानों द्वारा होता आया है। डॉ. उमेश मिश्र, डॉ. बाबुराम सक्सेना, डॉ. विमानबिहारी मजुमदार आदि विद्वान ग्रंथ में विद्यापति द्वारा स्वयं को 'खेलन कवि' कहने के कारण इस ग्रंथ को कवि की किशोरावस्था की रचना मान बैठते हैं। दरअसल 'खेलन कवि' की उपाधि विद्यापति को महाराज कीर्तिसिंह से उनकी सरस काव्य कौशल के कारण प्राप्त हुई थी। कीर्तिलता की रचना शैली एवं शब्द विन्यास से यह स्पष्ट है कि यह रचना विद्यापति की प्रौढ़ावस्था की है, न कि किशोरावस्था की। जिस भी दृष्टि से हो, प्रस्तुत रचना विद्यापति की अनूठी रचना है।

2.1.2.2.2. कीर्तिपताकाः

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना कवि विद्यापति ने अवहट्ट में महाराज शिवसिंह का यश वर्णन हेतु की थी। मूलतः महाराज शिवसिंह के चरित्रोत्कर्ष का वर्णन इस ग्रंथ में हुआ है। ग्रंथ का प्रारंभ चंद्रचूड़ के अर्द्धनारीश्वर रूप की अर्चना और गणेश स्तुति से हुआ है। वीर रस के साथ-साथ शृंगार रस के पदों की भी योजना ग्रंथ में हुई है। अवहट्ट में रचित प्रस्तुत ग्रंथ में बीच-बीच में संस्कृत के श्लोक और पद मिलते हैं। काव्य प्रतिभा की दृष्टि से कीर्तिपताका भी महत्त्व रखता है। इसकी एकमात्र हस्तलिखित खंडित प्रतिलिपि नेपाल राज दरबार के पुस्तकालय में उपलब्ध है, जिसमें से 22 पत्र अनुपलब्ध हैं।

2.1.2.3. मैथिली रचनाएँ:

मैथिली भाषा में रचित विद्यापति की एकमात्र अक्षय कृति है- 'पदावली' । 'पदावली' ही कवि विद्यापति की सर्वप्रसिद्धि का प्रमुख कारण रही है। इसका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है-

2.1.2.3.1. पदावलीः

'देसिल बअना सब जन मिथ्या' कहनेवाले महाकवि विद्यापति ने समय-समय पर जो पद मैथिली भाषा में लिखे, उन्ही गीतों का संग्रह 'विद्यापति पदावली' नाम से प्रसिद्ध है। 'गीत गोविंद' के रचयिता

'जयदेव' से प्रेरित होकर ही जनभाषा मैथिली में 'पदावली' की रचना विद्यापति समय-समय पर करते रहे। 'गीत गोविंद' की तरह विद्यापति की 'पदावली' भी गेय और कोमलकांत होने के कारण ही विद्यापति 'अभिनव जयदेव' और 'मैथिल कोकिल' नामों से प्रसिद्ध हुए। पदावली के पदों का संकलन कार्य अब तक अनेक विद्वानों द्वारा होता आया है। तत्कालीन समय में भिन्न-भिन्न संस्करण विद्यापति पदावली के रूप में उपलब्ध तो हैं, किंतु इनकी प्रामाणिकता को सत्यापित करना कठिन है, जिससे विद्यापति की पदावली की सठीक संख्या का निर्धारण करना कठिन है। विद्यापति के पदों का संग्रह-जार्ज अब्राहम, जार्ज ग्रियर्सन, चंद्रा झा, नगेंद्रनाथ गुप्त, सुभद्र झा, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवनंदन ठाकुर आदि ने की है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना द्वारा प्रकाशित 'विद्यापति की पदावली' के तीन खण्ड एक सफल योजना हैं, जिनमें दो प्रकाशित हो चुके हैं। विद्यापति की 'पदावली' का आदर राजा के राजमहलों से लेकर गरीबों की कुटिया तक समान रूप से है। विषय की दृष्टि से विद्यापति की पदावली को मुख्यतः तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है- शृंगार विषयक, भक्ति विषयक और विविध विषयक। शृंगार रस से सराबोर विद्यापति के पदों की संख्या अत्यधिक है, जिसमें नायक-नायिका क्रमशः कृष्ण और राधा हैं। संयोग और वियोग की दोनों अवस्थाओं से परिपूर्ण विद्यापति के श्रृंगारिक पदों की योजना निराली तथा उत्तम है। भक्ति विषयक पदों में शिव-स्तुति, दुर्गा, गौरी, गंगा आदि की स्तुति तथा हरि के प्रति दास्य भक्तिपूर्ण पद आदि हैं। विद्यापति की पदावलियों की प्रतियाँ खण्डित हो जाने के कारण तथा देश-काल-पात्र के प्रभाव हेतु पदावलियों की एकरूपता भले ही नष्ट हो गई हो, परंतु मिथिला के लोक कंठ में वे आज भी सक्रिय रूप में विद्यमान हैं। अतः विद्यापति की पदावली केवल मिथिला का ही गौरव नहीं, अपितु संपूर्ण हिन्दी साहित्य के लिए अमूल्य निधि है।

2.2. शंकरदेव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.2.1. शंकरदेव का व्यक्तित्व

2.2.1.1. जन्म एवं माता-पिताः

असम के धर्म, समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि के लिए शंकरदेव का प्रादुर्भाव एक उल्लेखनीय घटना रही है। मध्य युग के तत्कालीन अन्याय, अनीति और अशांतिकर परिवेश में शंकरदेव का जन्म हुआ, जिन्होंने स्वयं तो संघर्षशील जीवन ज़िया, किंतु जिनका संपूर्ण जीवन लोकमंगल की भावना से

ओत-प्रोत रहा। ऐसे एक प्रतिभामंडित पुरुष को असम के लोग केवल महापुरुष की आख्या देकर ही संतुष्ट नहीं होते, वल्कि उनमें अलौकिकता भी देखते हैं।

शंकरदेव के जीवन के संदर्भ में चरित पोथियों में मिलता तो है, परंतु उसमें कुछ हद तक अलौकिकता का आवरण छाया हुआ है। जिस कारण ऐतिहासिक तथ्य तथा विद्वानों के मतों के आधार पर शंकरदेव के जीवन के सम्बंध में जानना अपेक्षित होगा। शंकरदेव के जन्म के संदर्भ में विभिन्न मदभेदों को इस प्रकार देखा जा सकता हैं-

बरदोवा चरित के अनुसार-

शंकरदेव का जन्म- 1371 शक के कार्तिक संक्रांति अमावस्या तिथि में गुरुवार को मध्यरात्रि में हुआ था (नेओग 2006:19)।

कथा गुरुचरित के अनुसार-

> कार्तिकर संक्रांतिः बार वृहस्पतिः तिथि पुर्णिमा, श्रानणा नक्षत्र,
> मध्य निशा, ज्योतिक 1371 तेरश एक सत्तरि शकत। (लेखारु 2006:19)

चरितकार रामचरण ठाकुर के अनुसार-

> आश्विन प्रवेशि पांचदिन बहि गैल ।
> सेहि दिना शंकर देवर जन्म भैल ।।
> शुकुला दशमी आसि भैल शुक्रबारे ।। (रायचौधरी 2002:25)

अर्थात् आश्विन महीने के पाँच दिन पर शुक्ल दशमी शुक्रवार को शंकरदेव का जन्म हुआ था।

डॉ. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा के अनुसार-

1371 शक के कार्तिक या आश्विन अथवा फाल्गुन मास की गुरुवार मध्यरात्रि को शंकरदेव का जन्म मान सकते हैं (बायन 2014:68)।

इस प्रकार डॉ. महेश्वर नेओग ने भी 1371 शक अर्थात् सन् 1449 ई. को ही शंकरदेव का जन्म समय माना है (नेओग 2006:78)।

इस संदर्भ में शंकरदेव द्वारा रचित भागवत के दशम स्कंध में वर्णित आत्मवर्णन द्रष्टव्य है, जो निम्नलिखित अनुसार है-

बरदोवा नामे ग्राम शस्ये मत्स्ये अनुपाम
लोहित्यर आति अनुकुल ।
सेहि महा ग्रामेश्वर अछिलंत राजधर
कायस्थ कुलर पद्मफूल ।।
तान पुत्र सुर्यवर महा वरा देश धर
दानी मानी परम विशिष्ट ।
जार यश एभो जले जयंत माधव दले
दुई भाई जाहार कणिष्ठ ।।
तान पुत्र कुलोद्धार भौमिक मध्यत सार
प्रसिद्ध कुसुम नाम यार ।
ताने सुत शिशुमति कृष्ण पावे करि रति
बिरचिल शंकर पयार ।। (भकत 2014:69)

अर्थात् ब्रह्मपुत्र के किनारे बरदोवा ग्राम है, जो फसल, मछलियों से समृद्ध है। उसी ग्राम के मुखिया राजधर हैं, जो कायस्थ कुल के पद्मफुल अर्थात् प्रमुख थे। उन्हीं के पुत्र सूर्यवर थे, जो महादानी, मानी तथा विशिष्ट व्यक्ति थे। सूर्यवर के दो छोटे भाई जयंत और माधव दलै उन्हीं की तरह यशसम्पन्न थे। सूर्यवर का पुत्र जो कुल का शिरोमणि था, जिसने बरदोवा में बारभूञॉ वंश को आगे बढ़ाया वे ही कुसुम्बर नाम से प्रसिद्ध हुए। कुसुम्बर के पुत्र शंकर अर्थात् उन्होंने बाल्यावस्था से ही कृष्ण चरणों में समर्पित और प्रभु का गुण-कीर्तन कर कृष्ण भक्तिपरक रचनाएँ की।

इस प्रकार उपर्युक्त विभिन्न मतों और तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि- शंकरदेव का जन्म 'भौमिक मध्यत सार' अर्थात् बारभूञाँ वंश में बरदोवा के आलिपुखुरी में सन् 1449 ई. अर्थात् 1371

शक में ही हुआ था। तिथि और वार को लेकर किंचित मतभेद हैं, परंतु सन् 1449 ई. ही शंकरदेव का जन्म काल निश्चित होता है।

शंकरदेव के पिता शिरोमणि भूञाँ के वंशज कुसुम्बर भूञाँ और माता सत्यसंध्या थीं। पितृ कुसुम्बर ने अपनी पहली पत्नी सत्यसंध्या से कोई संतान न होने पर अनुधृति से द्वितीय विवाह किया था। किंतु द्वितीय विवाह के कुछ दिनों बाद ही सत्यसंध्या से शंकर का जन्म हुआ और अनुधृति से बनगयागिरि का। कथित है कि शंकर के जन्म के तीन दिन बाद ही माता सत्यसंध्या की और सात वर्ष की अवस्था में पिता कुसुम्बर परलोकगामी हुए। दादी खेरसुती ने ही शंकरदेव को पाल-पोस कर बड़ा किया।

2.2.1.2. वंश परिचयः

लगभग सन् 1350 ई. में कमताराजा दुर्लभनारायण और गोड़राजा धर्मनारायण के बीच एक युद्ध हुआ था। सात दिनों तक होनेवाले इस युद्ध के अंत में दोनों राजाओं के बीच हुई संधि के अनुसार दुर्लभनारायण ने अपने राज्य में ब्राह्मण पंडित और कायस्थ के अभाव हेतु ऐसे लोगों की मांग की। फलतः धर्मनारायण ने सात ब्राह्मण परिवार-कृष्ण पंडित, रघुपति, रामबर, लोहार, बयन, धरम, मथुरा और सात कायस्थ परिवार-चण्डीवर, हरि, श्रीहरि, चिदानंद, श्रीपति, श्रीधर और सदानंद को अपने राज्य से भेजा। कमताराजा दुर्लभनारायण ने बड़े ही आदरपूर्वक इन चौदह परिवारों को जमीन-जायदाद देकर राज्य में बसाया। इन्हीं में से चण्डीवर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा दुर्लभनारायण ने उन्हें देवीदास की उपाधि से विभूषित किया और शिरोमणि भूञाँ नियुक्त किया। कुछ दिनों के बाद चण्डीवर भूञाँ और कुछ साथी मिलकर मध्य असम के 'बरदोवा' में स्थायी रूप से निवास करने लगे। इसी चण्डीवर भूञाँ के वंश में ही शंकरदेव का जन्म हुआ।

'कथागुरुचरित' और 'बरदोवा चरित' के अनुसार शंकरदेव के आदि पुरुष प्रेम पूर्णानंदगिरि कान्यकुब्ज से थे। प्रेम पूर्णानंदगिरि ने कृष्ण की उपासना कर कृष्णगिरि के रूप में पुत्ररत्न को प्राप्त किया। आगे उन्हीं के वंश में लंडावर ने देवी चण्डी की उपासना कर पुत्ररत्न प्राप्त किया, जिसका नाम चण्डीवर था। लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा की 'बेजबरुवा ग्रंथावली' द्वितीय खण्ड, हरिनारायण दत्तबरुवा द्वारा सम्पादित

श्रीमद्भागवत (संपूर्ण) और डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी कृत 'श्रीमंत शंकरदेवः व्यक्तित्व और कृतित्व' के आधार पर शंकरदेव के 'बारभूञाँ वंशावली' को इस प्रकार देखा जा सकता हैं-

<u>बारभूञाँ वंशावली</u>

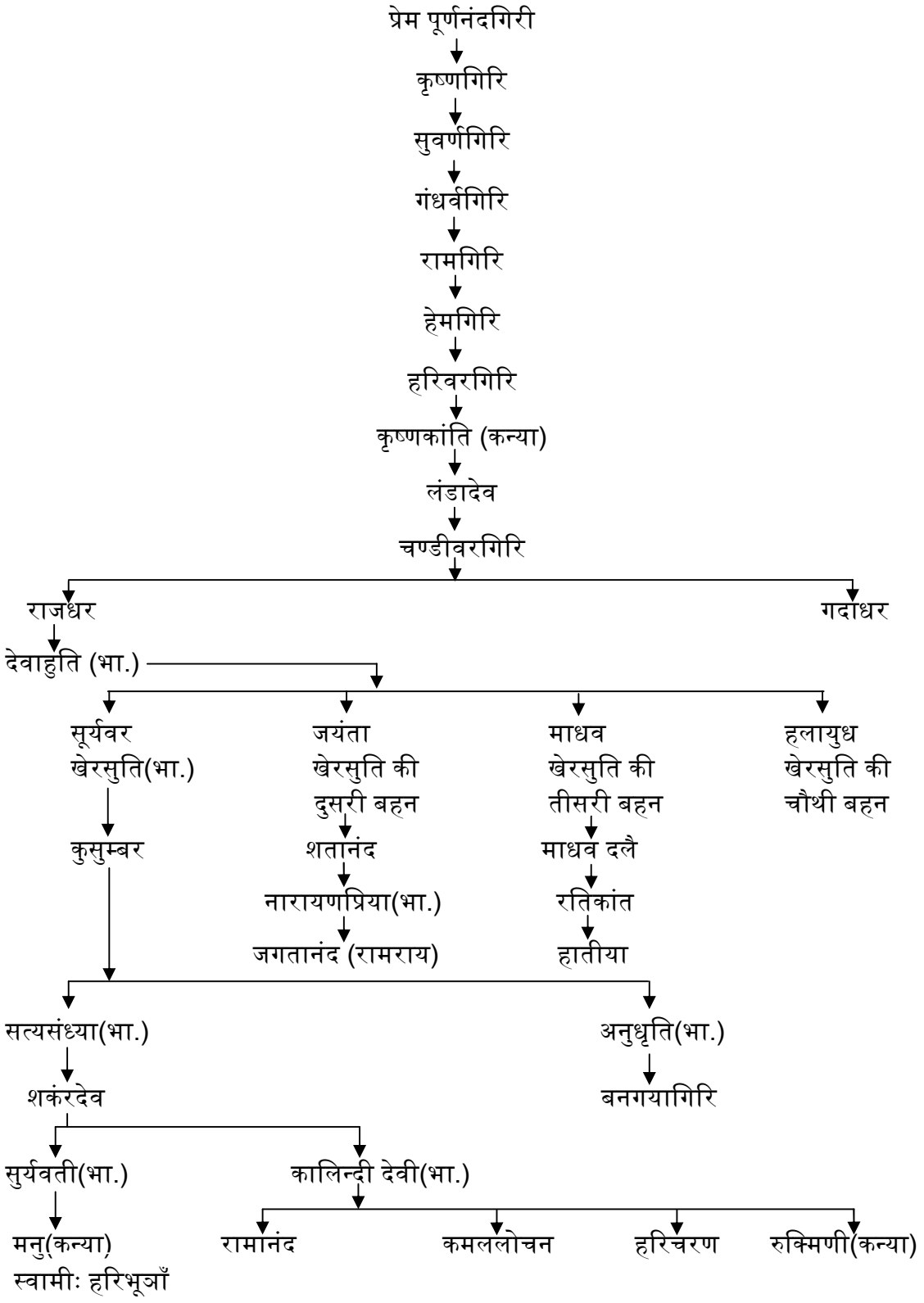

2.2.1.3. शिक्षा-दीक्षा एवं गुरुः

बचपन में ही अपने माता-पिता से वंचित होनेवाले शंकरदेव को दादी खेरसुती ने पाल-पोस कर बड़ा किया। बारह वर्ष तक शंकरदेव ने खेल-कूद और लड़कपन में ही बिता दिया। चिंतित दादी खेरसुती तब समझा-बुझाकर भाद्र महीने के एक गुरुवार को शुभ क्षण देखकर महेंद्र कंदलि के टोल में शंकर को ले गई। गुरु की छत्रछाया में केवल स्वरवर्ण और व्यंजनवर्ण सीख कर ही शंकर ने अपनी प्रतिभा का परिचय एक कविता रचकर कर दे डाली-

करतल कमल कमलदल नयन ।
भवदब दहन गहन वन शयन ।।
नपर नपर पर सतरत गमय ।
सभय मभय भय ममहर सततय ।
खरतर वरशर हत दश बदन ।
खगचर नगधर फणधर शयन ।।
जगदघ मपहर भवदय तरण ।
परपद लयकर कमलज नयन ।। (शंकरदेव 2020)

अर्थात् शंकरदेव अपने इष्ट कृष्ण की प्रार्थना कर कहते हैं-तुम्हारी हथेलियाँ कमल पुष्प जैसी और आँखें कमल की पंखुड़ियों जैसी हैं। तुम ही विश्व की विराट सत्ता एवं विपत्तियों के उद्धारक हो। गहन वन के सुप्तावस्था में एकमात्र तुम ही जाग्रत सत्ता हो। तुम्हीं तो कला सर्वभूत हो एवं परामात्मा हो। जो मेरे मन में उत्पन्न डर को लगातार दूर कर मेरी सुरक्षा करते हो। प्राण हरनेवाली तेज तीर से रक्षा करनेवाला तथा दशानन जैसे विनाशक शक्तियों का नाश करनेवाला तुम ही हो। तुम गरुड़ पर सवारी करते हो, पर्वतों का उत्थान करते हो तथा अनंत वासुकि नाग पर शयन करते हो। तुम्हीं पतित-पावन हो, सांसारिक दुःखों से मुक्त करनेवाला तथा तुम्हीं जगत के अंतिम निपुणता के कारक हो। अतः हे कमल लोचन प्रभु तुम्हारे चरणों में मेरा प्रणाम।

इसी टोल में ही शंकरदेव की असाधारण प्रतिभा को देख गुरु महेंद्र कंदलि ने ही शंकर को 'शंकरदेव' नाम के अभिहित किया। तभी से यही नाम अविराम रूप से बना रहा। अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के शंकरदेव अध्यवसायी थे। व्याकरण, कोश, पुराण, रामायण, महाभारत, चारों वेद, चौदह शास्त्र, काव्य, इतिहास इत्यादि का अध्ययन कर वे महापण्डित बन गये। इसके साथ ही शंकरदेव योगशास्त्र में भी निपुण हो गये थे। अतः शंकरदेव ज्ञानी, अध्यवसायी, विदग्ध पंडित, योगशास्त्र में निपुण बहुमुखी प्रतिभामण्डित व्यक्ति थे।

2.2.1.4. विवाह एवं परिवारः

शिक्षा पूर्ण करके स्वगृह लौटने पर ही शंकरदेव के कंधों पर शिरोमणि भूञाँ का दायित्वभार आ पड़ता है। उसी समय उनके आत्मीयों ने मिलकर शंकरदेव का विवाह हरिवरगिरि भूञाँ की कन्या सूर्यवती के साथ संपन्न करा देते हैं। विवाह के समय शंकरदेव 21 वर्ष के और सूर्यवती 14 वर्ष की थी। किंतु विवाह के तीन वर्ष बाद ही मनु नामक एक कन्या को जन्म देकर ही सूर्यवती परलोकगामी होती है। मनु के 9 वर्ष होने पर उसे रामचंद्र कायस्थ के पुत्र हरि के साथ विवाह कराकर शंकरदेव 32 वर्ष की उम्र में अपने अनुयायियों के साथ देशाटन के लिए निकल पड़ते हैं। बारह वर्ष पश्चात भारतवर्ष के भिन्न तीर्थों का भ्रमण कर शंकरदेव जब लौटे, तब दादी खेरसुती और उनके परिजनों ने मिलकर उनका दूसरा विवाह कालिन्दी देवी के साथ कराते हैं। कालिन्दी देवी से उन्हें चार संतानें हुई, जिनमें तीन पुत्र और एक कन्या थी। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- रामानंद (पुत्र), कमललोचन (पुत्र), हरिचरण (पुत्र) और रुक्मिणी (पुत्री) ।

असमीया विद्वान डॉ. नबीनचन्द्र शर्मा के शब्दों में-

शंकरदेव एक आदर्श गृही थे। जब स्वयं भगवान श्रीकृष्ण आदर्श गृही थे, तो उनके भक्तों का संसारी होने में कोई बाधा नहीं हो सकता। (शर्मा 1988:10)

अतः असमीया में प्रचलित एक वचन अनुसार 'भुकुतिर पिछतेई मुकुति' (भक्ति के बाद ही मोक्ष प्राप्ति) को फलीभूत करते हुए शंकरदेव ने अपने सांसारिक जीवन को आदर्श रूप में जीया। साथ ही अपना सामाजिक और साहित्यिक कार्य भी सफलता से किया।

2.2.1.5. कर्म-जीवनः

शंकरदेव के कर्म जीवन को शब्दों में आँकना सरल कार्य नहीं है। शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत शंकरदेव जब घर लौटे, तब उनके स्वजनों और हितचिंतकों ने पितृ कुसुम्बर के उत्तराधिकारी के रूप में उनके कंधों पर 'शिरोमणि भूञाँ' का दायित्व भार सौंपा। उस समय शंकरदेव की उम्र इक्कीस वर्ष की थी। राज्य संचालन के झंझट में फँसने का मन न होने पर भी उन्हें यह कार्य करना पड़ा। बड़े बूढ़े उन्हें डेकागिरि (युवक स्वामी) कहकर पुकारते थे। कुछ अशांतिपूर्ण परिवेश और स्थान की कमी के कारण शंकरदेव ने अपने स्वजनों सहित आलिपुखुरी का त्याग किया और बरदोवा में जाकर बस गए। यहाँ उन्होंने नामघर का निर्माण करने के साथ 'चिह्नयात्रा' नाटक की भी रचना की। वाद्य-नृत्य-अभिनय कौशल की प्रशिक्षण पर जोर दिया। 'चिह्नयात्रा' नाटक को भाउना के रूप में संगी-साथियों के साथ प्रदर्शन कर असम की जनता को चमत्कृत करने के साथ नई दिशा दी। अपने पैतृक विषय राज्यकार्य को संतुलित रूप से निर्वाह करने के साथ-साथ उनका मन आध्यात्मिक चिंतन के प्रति भी रमने लगा था। शंकरदेव ने गार्हस्थ जीवन के साथ-साथ सामाजिक कल्याण कार्य और आध्यात्मिक चिंता-चर्चा भी समानांतर जारी रखा। बरदोवा निवास काल में शंकरदेव ने वर्ग भेद समस्या, नारी उत्थान तथा समन्वयवाद जैसी लोकमंगलकारी कार्य भी किया। पुत्री मनु के बड़ी होने पर उसे हरि नामक युवक के साथ विवाह कराकर शंकरदेव अपने 17 संगियों के साथ देशाटन के लिए निकल पड़ते हैं। तब उनकी उम्र 32 वर्ष की थी। शंकरदेव ने गया, वृंदावन, प्रयाग, वाराणसी, गोकुल, गोवर्धन, मथुरा, कुरुक्षेत्र, रामह्रद, बाराह कुण्ड, सीताकुण्ड, अयोध्या, उपद्वारका, बदरिकाश्रम, जगन्नाथपुरी, सेतु खण्ड (रामेश्वरम) आदि तीर्थों की यात्रा की। अपने इस देशाटन काल में शंकरदेव भारत के विभिन्न संतों से मिले, भिन्न धर्म कार्य के मत-मतांतरों से अवगत हुए। भारतवर्ष में हो रहे

तत्कालीन भक्ति आंदोलन का उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। श्रवण-कीर्तन एवं तत्व चिंतन से उनकी निष्ठा हरि भक्ति की ओर बढ़ने लगी। विशाल भारतीय आत्मा को विष्णु कृष्ण की विराटता एवं सर्वशक्तिमान के रूप में पहचाना और एकशरण भक्ति के प्रति आकर्षित हुए। साथ ही राष्ट्रीय एकता के लिए एक भाषा के महत्त्व को भी समझा। बिहार, उड़ीसा, बंगाल में प्रसिद्ध विद्यापति के गीतों से प्रभावित हुए। फलस्वरूप ब्रजावली भाषा में विद्यापति के 'राम चरण चिते लागे' गीत के समतुल्य शंकरदेव ने 'मन मेरी राम चरणहि लागु' की रचना की। बारह वर्षों की लम्बी तीर्थ यात्रा कर शंकरदेव अपने साथियों सहित सन् 1493 ई. में बरदोवा लौट आए। दूसरी बार सांसारिकता के बंधन में बंधने पर भी शंकरदेव कृष्ण भक्ति का प्रचार-प्रसार करते रहे। वे असम में नव वैष्णव धर्म का प्रवर्तन कर 'एकशरण हरि-नाम धर्म' का प्रचार करने लगे। उनके पास भक्तों का समागम होने लगा। किंतु कछारियों के उपद्रव के कारण शंकरदेव ने सरसठ वर्ष की उम्र में पैतृक गृह त्याग कर सकुटुम्ब ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार पहुँचे। भलुकागिरि, कोमोराकुटा, गामौ आदि अनेक स्थानों पर वे निवास करते रहे। धुवाँहाटा निवास काल में ही उन्होंने 'कीर्तन-घोषा' के अनेक पदों की रचना की थी। माधवदेव के साथ शंकरदेव का मणिकांचन संयोग यही धुवाँहाटा निवास काल में ही हुआ था। देखते ही देखते शंकरदेव द्वारा प्रचारित एकशरण हरिनाम धर्म की लोकप्रियता बढ़ने लगी, क्योंकि उनका उदार धर्म सबके लिए खुला था, जिससे कर्मकाण्डी ब्राह्मण अपने जीविका निर्वाह हेतु आशंकित हो उठे और शंकरदेव का जीना मुश्किल कर दिया। आहोम राज्य को त्यागकर शंकरदेव कोच राज्य जा पहुँचे। कोच राज्य के अंतर्गत पाटबाउसी में रहकर शंकरदेव ने सत्रह शास्त्रों की रचना की। कीर्तन-घोषा की समाप्ति भी यहीं हुई। यहीं से दूसरी बार सन् 1550 ई. के आसपास शंकरदेव एक सौ बीस अनुयायियों के साथ तीर्थ यात्रा पर गए। छह महीने बाद ही तीर्थ यात्रा से लौटकर धर्म प्रचार कार्य में जुटे रहे। ब्राह्मणों की शिकायत पर कोचराजा नरनारायण के राजनिग्रह के कारण शंकरदेव कुछ दिनों तक आत्मगोपन करते रहे। बाद में राजसभा में उपस्थित होकर अपने पाण्डित्य तथा प्रतिभा से वे राजा को अपना कायल बना लेते हैं। राजा नरनारायण के 'हाती मारि भुरुकात भरोवा' (गागर में सागर भरने) की बात पर एक ही रात्रि के भीतर शंकरदेव ने 'गुणमाला' की रचना कर राजा को भेंट की थी, जो असमीया साहित्य के लिए शंकरदेव की अन्य एक अमूल्य कृति है। नरनारायण के ही सम्बंधी चिलाराय देवान के साथ शंकरदेव का घनिष्ठ सम्बंध था।

चिलाराय के आग्रह पर ही शंकरदेव अंतिम काल तक कोचबिहार में रहे और वहीं उनका कर्म जीवन और संपूर्ण जीवन का भी अंत होता है। इसी तरह शंकरदेव ने पैतृक कार्य का दायित्वभार सम्भालने के साथ-साथ धर्म प्रचार, साहित्य सर्जन और लोकमंगलकारी कार्य कर अपना कर्म जीवन व्यतीत किया।

2.2.1.6. उपाधियाँ:

विशिष्ट व्यक्तित्व, बहुमुखी प्रतिभा और असाधारण पाण्डित्य के अधिकारी शंकरदेव को अनेक उपाधियों से अभिहित किया जाता है। असम के धर्म, समाज तथा संस्कृति के लिए उनका योगदान अमूल्य हैं। शिक्षा जीवन में ही उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर गुरु महेंद्र कंदलि ने उनके नाम के साथ 'देव' उपाधि जोड़कर 'शंकरदेव' नाम से अभिहित किया था। लोकमंगलकारी कार्य तथा साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें महापुरुष, जगतगुरु, सर्वगुणाकार आदि नामों से पुकारा जाता है।

2.2.1.7. मृत्युः

शंकरदेव अपने अंतिम समय में कोचबिहार में रहने लगे थे। शंकरदेव के शरीर के अंगविशेष में एक फोड़ा निकल आया था। उसी की असहनीय पीड़ा के कारण सन् 1568 ई. के सितम्बर (गुरुवार, भाद्र शुक्ल सप्तमी, 1490 शकाब्द) महीने में प्रायः एक सौ बीस वर्ष की आयु में महापुरुष शंकरदेव का कोचबिहार में देहावसान हुआ था। शंकरदेव का अंतिम संस्कार तोरोचा नदी के किनारे सम्पन्न किया गया था।

2.2.2. शंकरदेव का कृतित्वः

असमीया समाज तथा संस्कृति को उज्जीवित कर उसे नई दिशा प्रदान करनेवाले शंकरदेव बहुमुखी प्रतिभासंपन्न विशिष्ट व्यक्ति थे। शंकरदेव केवल धर्म प्रचारक ही नहीं, वे एक ही साथ कवि, गद्यकार, चित्रकार, नाट्यकार, संगीतकार, अभिनेता, वाद्यकार, अनुवादक तथा समाज के हितचिंतक थे। नव वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार तथा असमीया समाज के हितोद्धार के उद्देश्य को सफल बनाने के लिए शंकरदेव ने

साहित्य को माध्यम बनाया। शंकरदेव ने अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर विपुल साहित्य के संभार की रचना कर असमीया साहित्य का भंडार समृद्ध किया। असम में भी उस समय संस्कृत भाषा का ही वर्चस्व था। किंतु सामान्य जनता के लिए संस्कृत बोधगम्य न होने की स्थिति को शंकरदेव ने भलिभांति समझा। इसलिए उन्होंने जनभाषा असमीया में साहित्य सर्जन कर महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया। साथ ही असमीया, मैथिली भाषा को मिश्रित कर ब्रजावली भाषा में गीत और नाटक लिखकर राष्ट्रीय भावबोध को दृष्टि में रखकर समग्र भारत को जोड़ने का प्रयास किया। विशिष्ट असमीया साहित्यकार तथा समीक्षक डॉ. महेश्वर नेओग ने शंकरदेव की रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया है-आदि या बारभूञाँ राज्यांतर्गत काल (1438 शक तक) -तरूणता, चपलता और समृद्धि काल। इसमें हरिचंद्र उपाख्यान, रुक्मिणीहरण काव्य, कीर्तन-घोषा, उरेषा वर्णन, भक्ति प्रदीप आदि की रचना हुई। मध्य या आहोम राज्यांतर्गत काल (1438 शक से 1465 शक तक) – अशांति, आत्म-समालोचना और संघर्षपूर्ण काल। इसमें कीर्तन-घोषा के कुछ अंश, पत्नीप्रसाद नाट, भागवत की शिशुलीला का अनुवाद कार्य किया गया। अंतिम या कोच राज्यांतर्गत काल (1465 शक से 1490 शक तक) – अपेक्षाकृत शांति, भक्ति आंदोलन की सफलता और शंकरदेव का मनोविकास काल। इसमें कीर्तन-घोषा के कुछ अंश, कालि दमन, केलिगोपाल, रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण और रामविजय नाटकों, कुरूक्षेत्र, भक्ति रत्नाकर आदि की रचना हुई। (भगत 2014: 77)

अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ शंकरदेव की रचनाओं को भाषिक दृष्टिकोण के आधार पर तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार है-

2.2.2.1. असमीया रचनाएँ

2.2.2.2. ब्रजावली रचनाएँ

2.2.2.3. संस्कृत रचनाएँ

यहाँ प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत आनेवाली रचनाओं का परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है-

2.2.2.1. असमीया रचनाएँ:

सामान्य जनता के हितार्थ शंकरदेव ने असम की जनभाषा असमीया में साहित्य रचना की। असमीया में रचित रचनाओं का सम्यक परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

2.2.2.1.1. भक्ति प्रदीपः

'गरुड़ पुराण' के आधार पर शंकरदेव ने कुल 308 छंदों में इस ग्रंथ की रचना की है। इसमें कृष्ण-अर्जुन संवादों के माध्यम से एकशरण हरिनाम धर्म के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। साथ ही भागवत धर्म, भक्तलक्षण, कर्मकाण्ड का निषेध, कीर्तन का महत्त्व, प्रेम भक्ति के सम्बंध में विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है।

2.2.2.1.2. हरिश्चंद्र उपाख्यानः

मार्कण्डेय पुराण के 7 और 8 वें अध्यायों पर आधारित हरिश्चंद्र उपाख्यान शंकरदेव की प्रारंभिक काल की रचना है। मूलतः एकशरण हरिनाम धर्म के चार तत्वों-गुरु, देव, नाम और भक्त के महत्त्व को प्रतिपादित करना ही इस काव्य ग्रंथ का मुख्य ध्येय रहा है। शंकरदेव ने प्रस्तुत कृति में राजा हरिश्चंद्र को आदर्श राजा के रूप में अनेक गुणों से संपन्न तथा इसके विपरीत विश्वमित्र को कर्मकाण्डी ब्राह्मण, क्रोधी तथा निर्दय चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। नववैष्णव धर्म के प्रचार के उद्देश्य से रचित हरिश्चंद्र उपाख्यान शंकरदेव की असाधारण काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है।

2.2.2.1.3. रुक्मिणी हरण काव्यः

शंकरदेव ने हरिवंशपुराण और भागवत में वर्णित कृष्ण रुक्मिणी के प्रेम प्रसंग को सम्मिश्रित करते हुए रुक्मिणी हरण काव्य की रचना की। हरिवंशपुराण और भागवत से कथा का आधार लेने पर भी प्रस्तुत काव्य में शंकरदेव ने अपनी मौलिक काव्य प्रतिभा से कृति को अत्यंत सरस, सजीव और आकर्षणीय रूप

प्रदान किया है। कुल 796 छंदों से पूर्ण यह एक खण्डकाव्य है। शृंगार और वीर रस की प्रधानता होने पर भी इसमें हास्य रस का भी समावेश मिलता है। प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण को नायक के साथ कृष्ण के भक्तवत्सल और वीर रूप का भव्य चित्रण किया है। काव्य की नायिका रुक्मिणी जो लक्ष्मी का अवतार है, उनका लौकिक रूप में चित्रण किया है। नगर वर्णन, वसंत वर्णन, विवाह वर्णन आदि में असम के जनजीवन का चित्रण द्रष्टव्य है। असमीया मुहावरे, कहावतों का प्रयोग तथा विभिन्न छंदों के प्रयोग द्वारा काव्य की उत्कृष्ट शैली में रचना की है। अतः मौलिकता और साहित्यिक उत्कृष्टता दोनों ही दृष्टियों से रुक्मिणी हरण काव्य शंकरदेव की अन्यतम उत्कृष्ट रचना है।

2.2.2.1.4. गुणमाला काव्यः

शंकरदेव ने कोचराजा नरनारायण के 'गागर में सागर भरने' के आग्रह या शर्त पर एक ही रात में इस काव्य कृति की रचना की थी।

डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी अपने ग्रंथ में लिखते हैं-

प्रसंगतः यह उल्लेखनीय है कि शंकरदेव ने बरदोवा निवास काल में ही इस काव्य के द्वितीय से षष्ठ खण्डों की रचना कर गामौं के किसी सतानंद भक्त को गाने के लिए दिया था। राजा नरनारायण के आग्रह पर शंकरदेव ने कोचबिहार में रातभर में प्रथम खण्ड लिखकर पूर्वरचित पाँच खण्डों को जोड़ कर शर्त के अनुसार दूसरे दिन कोच दरबार में प्रस्तुत किया था। (रायचौधरी 2002:64)

मूलतः भागवत के दशम और एकादश स्कंध की कथा के सार के रूप में ही गुणमाला की रचना शंकरदेव ने की थी। असमीया छह अक्षरोंवाला कुसुममाला छंद में रचित यह कृति छह खण्डों में विभक्त है। गुणमाला में एकशरण धर्मानुसार नाम, भक्ति और देव के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया हैं। असमीया वैष्णव सत्रों के साथ भक्तवत्सल जीवन में गुणमाला का पाठ करने की परंपरा सजीव रूप में विद्यमान है।

2.2.2.1.5. भागवत (अनूदित काव्य):

भागवत वैष्णव भक्ति धर्म का मूल ग्रंथ है। शंकरदेव भागवत का अध्ययन करने के पश्चात असमीया भाषा में विभिन्न स्कंधों का अनुवाद कार्य समय-समय पर करते रहे। शंकरदेव द्वारा अनूदित भागवत का अनुवाद उच्चस्तर का साहित्य है। इसके अनुवाद कार्य में शंकरदेव ने स्वतंत्रतापूर्वक काम लिया, जिस कारण अनूदित रचना होने पर भी यह मौलिक कृति जैसी है। शंकरदेव द्वारा भागवत के अनूदित स्कंध इस प्रकार हैं-प्रथम स्कंध, द्वितीय स्कंध, तृतीय स्कंध (अनादि पातन), षष्ठ स्कंध, अष्टम स्कंध, दशम स्कंध (आदि दशम एवं कुरुक्षेत्र), एकादश स्कंध (निमि-नव-सिद्ध संवाद) एवं द्वादश स्कंध।

शंकरदेव के अनूदित भागवत के प्रथम स्कंध में कुल 421 छंद हैं, जिसमें पूर्णावतार श्रीकृष्ण कथा को अति संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय स्कंध में कुल 261 छंदों में एकशरणीया धर्मानुकूल श्रीकृष्ण ही एकमात्र भजनीय और इष्ट हैं, यही संदेश दिया गया है। अनादि पातन जो एक स्वतंत्र ग्रंथ है, वह भागवत के तीसरे स्कंध और वामन पुराण के आधार पर रचा गया है। इसमें कुल 299 छंदों में सृष्टि तत्व, प्रलय कथा, ज्योतिष चक्र आदि से सम्बंधित बातें हैं। षष्ठ स्कंध के आधार पर अनूदित अजामिलोख्यान भी एक स्वतंत्र काव्य है, जिसमें कुल 426 छंद हैं। इसमें नारायण नाम मात्र उच्चारण से ही मोक्षप्राप्ति को दिखाकर विष्णु भक्ति के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। अष्टम स्कंध में अमृत मंथन और बलिछलन ये दो प्रसंग अनूदित हुए हैं। दशम स्कंध को शंकरदेव ने दो खण्डों में विभाजित किया है-पूर्वार्द्ध (आदि दशम) और उत्तरार्द्ध (कुरूक्षेत्र) । दशम स्कंध का अनुवाद सर्वाधिक आकर्षणीय एवं चमत्कारपूर्ण है। एकादश स्कंध की कथा स्वतंत्र कथा-खण्डों में विभाजित है-कृष्ण-प्रयाग और पाण्डव निर्णय और निमि-नव-सिद्ध संवाद। प्रथम खण्ड में 846 छंद और द्वितीय खण्ड में 427 छंद हैं। द्वादश स्कंध का अनुवाद 438 छंदों में पूर्ण हुआ है, जिसमें कलिधर्म कथा, युग धर्म, ब्रह्मोपदेश राजवंशावली, परीक्षित का ब्रह्मज्ञान लाभ, नारायण स्तव वर्णन, भागवत का तात्पर्य इत्यादि विषयों का वर्णन है। इस प्रकार शंकरदेव द्वारा अनूदित भागवत असमीया भक्ति साहित्य का विशिष्ट ग्रंथ है।

2.2.2.1.6. उत्तराकाण्ड रामायणः

अप्रमादी कवि माधव कंदलि द्वारा रचित 'पंचकाण्ड रामायण' के साथ शंकरदेव ने उत्तराकाण्ड और शिष्य माधवदेव से आदिकाण्ड अनूदित कराकर सप्तकाण्ड रामायण को संम्पूर्ण किया। उत्तराकाण्ड की कथा सीता वनवास से राम का स्वर्ग गमन तक है। अनुदित रचना होने पर भी इसमें भी शंकरदेव ने मौलिकता का समावेश किया है।

2.2.2.1.7. कीर्तन-घोषाः

शंकरदेव ने भागवत, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, श्रीमद्भागवत गीता आदि शास्त्रों का अध्ययन कर उसके सार को कीर्तन-घोषा के रूप में रचना की। एकशरण-हरि नाम धर्म के प्रचार हेतु समय-समय पर शंकरदेव ने जिन घोषा गीतों की रचना की थी, उन्हीं का संकलन कीर्तन-घोषा है। इस काव्य ग्रंथ में 30 खण्डों में विभाजित प्रत्येक खण्ड स्वयंपूर्ण होने के साथ प्रसाद तत्व से अभिव्यंजित है। क्योंकि कीर्तन-घोषा में श्रीकृष्ण के करुणामय, भक्तवत्सल रूप का चित्रण हुआ हैं। कीर्तन-घोषा के खण्ड इस प्रकार हैं-चतुर्विंशति अवतार वर्णन, नामापराध, पाषण्ड मर्दन, ध्यान वर्णन, अजामिलोपाख्यान, प्रह्लाद चरित्र, गजेन्द्रोपाख्यान, हरमोहन, बलिछलन, शिशुलीला, कालि-दमन, रास-क्रीड़ा, कंसबध, गोपी उद्धव संवाद, कुजीर बांछा पूरण, अक्रुरर बांछा पूरण, जरासंध युद्ध, कालयवन वध, मुचुकंद स्तुति, स्यमंत हरण, नारदर कृष्ण दर्शन, विप्र-पुत्र आनयन, दामोदर विप्रोपाख्यान, देवकी-पुत्र आनयन, वेद स्तुति, लीलामाला, श्रीकृष्णर वैकुण्ठ प्रयाण, सहस्र नाम वृत्तांत, उरेषा वर्णन और भागवत तात्पर्य वर्णन।

शंकरदेव के प्रयाण के बाद उनके शिष्य माधवदेव अपने भांजे रामचरण ठाकुर द्वारा भिन्न सत्रों से कीर्तन-घोषा का संकलन संपादन कराया था। असम के सत्रों तथा नामघरों में संकीर्तन करने के लिए इन्हीं घोषा पदों को सामूहिक रूप में गाया जाता है। भक्तजन बड़े ही आदर तथा श्रद्धापूर्वक इन गीतों का संकीर्तन करते हैं। शंकरदेव द्वारा रचित 'कीर्तन-घोषा' उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध लोकप्रिय रचना होने के साथ ही असमीया साहित्य के लिए भी अमूल्य ग्रंथ है।

2.2.2.2. ब्रजावली रचनाएँ:

राष्ट्रीय बोध से शंकरदेव भलिभाँति परिचित थे। तीर्थ-यात्रा के दौरान शंकरदेव देश में एक भाषा के महत्त्व को गहराई से बोध कर पाने के कारण तीर्थ-यात्रा से लौटने पर ब्रजावली (ब्रजबुलि) भाषा में साहित्य की रचना की। शंकरदेव ने ब्रजावली में बरगीतों और नाटकों की रचना की, जिसका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

2.2.2.2.1. बरगीतः

महापुरुष शंकरदेव द्वारा रचित भक्तिमूलक गीत ही बरगीत के रूप में प्रसिद्ध हैं। बरगीत शंकरदेव की नूतन सर्जन है। पहली बार तीर्थ यात्रा करते समय विद्यापति की प्रसिद्ध 'पदावली' के गीतों को सुनने के बाद शंकरदेव ने 'मन मेरी चरणेहि लागु' नामक प्रथम बरगीत की रचना बदरिकाश्रम में की थी। चरित पोथियों के अनुसार शंकरदेव ने दो सौ चालीस बरगीतों की रचना की थी। चूणपोरा निवास काल में कमला गायन नामक व्यक्ति इन बरगीतों को रटने के लिए ले गए थे, किंतु दुर्भाग्यवश आग लग जाने के कारण वे सब बरगीत अग्नि के गर्भ में समा गए। इस दुःखद घटना के बाद शंकरदेव ने अपने प्रिय शिष्य माधवदेव से बरगीत रचने का आग्रह किया। बाद में माधवदेव ने 157 बरगीतों की रचना की। वर्तमान समय में शंकरदेव के केवल चौंतीस बरगीत ही प्राप्य हैं। ये बरगीत असमीया भक्तवत्सल जनजीवन का अभिन्न अंग है। कृष्ण-वंदना, दास्य-भक्ति भावना, भक्ति की महत्ता, संसार की क्षणभंगुरता, गोपी-विरह, नाम-महिमा, कृष्ण का रूप-वर्णन आदि ही बरगीत के मुख्य उपजीव्य हैं।

2.2.2.2.2. नाटकः

शंकरदेव को असमीया नाट्य साहित्य का जनक माना जाता है। 'ओजापालि', 'ढुलीया', 'पुतुला-नृत्य' जैसे लोक नाट्य परंपरा असम में पूर्व से प्रचलित थी। परंतु नाटक की पूर्ण परंपरा का निर्वाह शंकरदेव ने ही किया। शंकरदेव ने 'एक अंक' वाले अंकीया नाटक की रचना की, फिर उसे भाउना (अभिनय करना) के रूप में जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत किया। वैसे तो शंकरदेव का प्रथम अंकीया नाट 'चिह्नयात्रा' है।

बरदोवा निवास काल में शंकरदेव ने इसे प्रस्तुत किया था। पर नाट्य की कथा अनुपलब्ध होने के कारण इसका पुनः मंचन संभव नहीं हो सका। वर्तमान में शंकरदेव के छह नाटक उपलब्ध हैं- पत्नीप्रसाद नाट, कालि-दमन नाट, केलिगेपाल नाट, रुक्मिणी हरण नाट, पारिजात हरण नाट एवं रामबिजय नाट। इन नाटकों के संवादों में गद्य का प्रयोग किया गया हैं। इन नाटकों का संक्षेप परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

2.2.2.2.2.1. पत्नीप्रसाद नाटः

भागवत पुराण के दशम स्कंध के तेईसवें अध्याय के आधार पर शंकरदेव ने तत्कालीन कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के भ्रष्टाचार के खिलाफ हरि भक्ति को श्रेष्ठ प्रतिपादित करने हेतु प्रस्तुत नाटक की रचना की थी। इस नाटक के रचनाकाल का समय लगभग सन् 1521 ई. है। इसकी रचना शंकरदेव ने धुवाँहाटा निवास काल में की थी। संक्षिप्त कथा के कलेवर में रचित इस नाटक का मुख्य उद्देश्य एकशरण हरिनाम धर्म की प्रतिष्ठा करना है।

2.2.2.2.2.2. कालि-दमन नाटः

प्रस्तुत नाटक का आधार भागवत के दशम स्कंध के 16 एवं 17 वां अध्याय हैं। रचना कौशल की दृष्टि से कालि-दमन नाट अन्यतम कृति है। वस्तुतः प्राक शंकरी युग में मनसा पूजा तथा नाग पूजा का काफ़ी प्रचलन था। इसलिए शंकरदेव ने इसकी कथा में शाक्त की दुर्जेय शक्ति पर वैष्णव भक्ति की विजय दिखाया है। नाटक में कालिनाग जो दुष्ट, दुर्दांत तथा उत्पीड़क का प्रतीक है, जिसका कृष्ण दमन करते हैं। मूलतः एकशरण कृष्ण भक्ति का अंतर्निहित अर्थ नाटक का मुख्य उपजीव्य है।

2.2.2.2.2.3. केलिगोपाल नाटः

शंकरदेव के इस नाटक का मूल आधार भागवत के दशम स्कंध से लिया है। भागवत के दशम स्कंध के 29 से 33 अध्याय तक पाँचों अध्यायों में वर्णित रास लीला वर्णन के आधार पर केलिगोपाल नाटक की

रचना की है। पर शंखचूड़ प्रसंग का संयोग शंकरदेव की मौलिक उद्भावना है। अन्य अंकीया नाटकों में भी गीतों की प्रधानता है, पर इसमें कुल 32 गीत हैं। मधुर गुणसम्पन्न शब्द, भाषा, छंद तथा अर्थ की संगति ने नाटक के गीतों को अधिक आकर्षक रूप प्रदान किया है। शृंगार के संयोग अवस्था के साथ वियोगावस्था का भी सुंदर रूप में चित्रण हुआ है। प्रस्तुत नाटक से शंकरदेव ने कृष्ण नाम को श्रेष्ठ घोषित किया है।

2.2.2.2.2.4. रुक्मिणी हरण नाटः

प्रस्तुत नाटक का मूल स्रोत श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कंध के 52 वें अध्याय से 54 वें अध्याय तक तीन अध्याय हैं। भागवत में वर्णित रुक्मिणी विवाह प्रसंग को अपनी मौलिक संरचना से उसे नाटक के रूप में शंकरदेव ने प्रस्तुत किया है। अपनी मौलिक संरचनात्मक प्रतिभा कौशल से नूतन चरित्रों का निर्माण कर उनमें सजीवता और नाटकीयता का समावेश करने के साथ असम के समाज जीवन की झाँकी का भी चित्रण किया है। इसमें भी श्रीकृष्ण का गुणानुकीर्तन कर शंकरदेव ने भक्तवत्सल रूप को प्रस्तुत किया है।

2.2.2.2.2.5. पारिजात हरणः

शंकरदेव ने श्रीमद्भागवतपुराण, विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण के आधार पर प्रस्तुत नाटक की रचना की है। श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी और सत्यभामा के मध्य पारिजात फूल को लेकर वैमनस्य, श्रीकृष्ण का इंद्र से युद्ध कर पारिजात वृक्ष प्राप्त करना आदि प्रसंगों को शंकरदेव ने बड़े ही नाटकीय ढंग से इस नाटक में प्रस्तुत किया है। पारिजात हरण को शंकरदेव की प्रौढ़ और सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जाता है। इस नाटक में भक्ति के साथ शृंगार, वीर एवं हास्य रसों का भी समन्वय हुआ है। यहाँ रुक्मिणी को 'भक्ति' और सत्यभामा को 'माया' के रूप में किया गया है। सत्यभामा और इंद्र की पत्नी शची के बीच होनेवाला वाकयुद्ध से असमीया ग्रामीण जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। लौकिकता और आध्यात्मिकता के अपूर्व संयोग तथा अनुपम नाटकीय चित्रण करते हुए शंकरदेव ने अनुपम नाटक के रूप में पारिजात हरण की भेंट असमीया साहित्य को दी है।

2.2.2.2.2.6. रामविजय नाटः

रामविजय अथवा सीता स्वयम्बर शंकरदेव की रामकथा पर आधारित एकमात्र नाटक है। जो शंकरदेव की अंतिम कृति भी है। इसकी कथा का स्रोत वाल्मिकी रामायण (आदिकाणड 16 से 72) और अग्निपुराण से चयन किया गया है। आवश्यकतानुसार ही कथा का आधार शंकरदेव ने ग्रहण किया है और अपनी मौलिक योजना से प्रस्तुत नाटक की रचना की है। नाटकीयता की दृष्टि से यह भी अत्यंत प्रौढ़ कृति है। भक्ति के साथ वीर, शृंगार एवं हास्य रस का समन्वय हुआ है। राम-सीता के विवाह परम्परा में असम की आंचलिकता का चित्रण अनुपम रूप में दर्शनीय है। प्रस्तुत नाटक भी शंकरदेव की अनुपम रचना कौशल का परिणाम है।

2.2.2.3. संस्कृत रचनाएँ:

शंकरदेव द्वारा संकलित एवं रचित संस्कृत में दो रचनाएँ इसके अंतर्गत आती हैं, भक्ति रत्नाकर और टोटय, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

2.2.2.3.1. भक्ति रत्नाकरः

संस्कृत में रचित भक्ति रत्नाकर का संकलन शंकरदेव ने पाटवाउसी निवास काल में किया था। इसमें कुल 38 अध्यायों के अंतर्गत 564 श्लोक संग्रहित हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में निहित भक्ति तत्व विषयक श्लोक भिन्न वैष्णव शास्त्रों के संस्कृत श्लोकों से संकलित हैं। नव वैष्णव धर्म के प्रचार के उद्देश्य हेतु शंकरदेव ने प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से भक्ति-माहात्म्य, प्रवृत्तिमार्ग की निंदा, मुक्ति का उपाय, हरिनाम-कीर्तन आदि विषयों को समाविष्ट किया है। साथ ही एकशरण-हरि नाम धर्म के चार तत्वों-गुरु, देव, नाम और भक्त के सिद्धांत को स्थापित किया।

2.2.2.3.2. टोटयः

संस्कृत में शंकराचार्य कृत 'प्रमुमीशमनिशमशेष गुणम्' जैसे छंद की तरह ही शंकरदेव ने भी संस्कृत में विष्णु-कृष्ण की स्तुति के लिए टोटय की रचना की। 9 छंदों और 36 पंक्तियों में रचित प्रस्तुत रचना से शंकरदेव की संस्कृत में काव्य कारीगरी का अनुपम निदर्शन होता है। टोटय की आरंभ की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

मधुदानवदारणदेववरम्, वरवारिजलोचन चक्रधरम् ।
धरणीधरधारणध्येयपरम्, परमार्थविद्याशुभ नाशकरमम ।। (रायचौधरी 2002:47)

2.2.2.3.3. भटिमाः

शंकरदेव द्वारा रचित फुटकर गीतों को ही भटिमा कहा जाता है। ये भटिमाएँ मूलतः प्रशस्तिमूलक गीत हैं। शंकरदेव द्वारा रचित भटिमाएँ तीन प्रकार की मानी जाती हैं-देव भटिमा, राज भटिमा और नाट्य भटिमा। प्रथम की भाषा संस्कृत और शेष दो ब्रजावली भाषा में हैं। 'देव भटिमा' में श्रीकृष्ण की बाल लीला प्रसंग, जैसे पुतना वध से लेकर कंसबध तक प्रशस्ति गीत के रूप में प्रस्तुत है। कोचराजा नरनारायण की प्रशंसा के लिए रचित दो भटिमाएँ ही 'राज भटिमा' है। प्रथम भटिमा में राजा के व्यक्तित्व और द्वीतिय में राजा की महिमामण्डित रूप का वर्णन हैं। नाट्य भटिमाओं के प्रारम्भ में कृष्ण तथा राम की स्तुति और अंत मुक्तिमंगल भटिमा (भरतवाक्य) से हुआ है।

2.3. निष्कर्षः

विलक्षण प्रतिभा के कवि विद्यापति हिन्दी साहित्य के आदिकाल और भक्तिकाल के संक्रमणकाल के कवि के रूप में जाने जाते हैं। विवादास्पद होने पर भी अंतःसाक्ष्य तथा बहिःसाक्ष्य के आधार पर विद्यापति का जन्म मिथिला के दरभंगा जिले के अंतर्गत विसपी ग्राम में सन् 1360 ई. के आस-पास माना जाता है।

विद्यापति के पिता का नाम गणपति ठाकुर और माता का नाम हंसिनी देवी था। तत्कालीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा पंजी-प्रबंधों से विद्यापति के बिसईबार वंशावली के बारे में प्राप्त सूत्रों के अनुसार उनके पूर्वज तथा वंश परंपरा के लोगों पर सरस्वती की अपूर्व कृपा बनी रही। विद्यापति के वंशज मिथिला के राजदरबार में उच्च पदों पर आसीन थे। जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने राज्यकार्य में अपनी निपुणता दिखलाई, उसीप्रकार सरस्वती की सेवा में भी लगे रहे। विद्यापति ने मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्वान हरिमिश्र से विद्याध्ययन किया था। बचपन से ही तेज विद्यापति ने वेद-पुराणादि, धर्मग्रंथों, दर्शन, न्यायशास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन कर पाण्डित्य हासिल किया। विद्वान वंश परंपरा में जन्मग्रहण करनेवाले विद्यापति का वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन सुखमय ही व्यतीत हुआ। विद्यापति के तीन पुत्र (वाचस्पति ठाकुर, हरपति ठाकुर, नरपति ठाकुर) और एक पुत्री (दुल्लहि) हुई। पुत्र नरपति ठाकुर ज्योतिष शास्त्र में परम विद्वान थे, उसीप्रकार पुत्रवधू चंद्रकला भी महापण्डित थी। इस प्रकार पुत्र तथा पुत्रवधू ने परवर्ती समय में भी वंश की ख्याति क़ायम रखी। अद्‌भुत काव्य प्रतिभा के कारण ही विद्यापति को जीवनकाल में ही अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया। वे इस प्रकार हैं-अभिनव जयदेव, मैथिल कोकिल, कवि कंठाहार, खेलन कवि, राजपण्डित, कविरंजन, कवि शेखर, कविरत्न, दशावधान इत्यादि। विद्यापति का अधिकांश जीवन मिथिला के राजदरबार में ही बीता। राजाश्रित रहकर ही कवि विद्यापति ने धर्म, वीरता, मनोरंजन के साथ सामाजिक पक्ष को भी अपने साहित्यिक कार्यों के माध्यम से प्रकाशित किया। राजाश्रय में रहकर ही विद्यापति ने धन, सम्पत्ति, यश तथा सम्मान प्राप्त किया। विद्यापति के जन्म की तरह मृत्यु के संदर्भ में भी विवाद रहा है। उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कह सकते हैं कि विद्यापति की मृत्यु कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी सन् 1448 ई. के आसपास मुजफ्फरपुर जिले के गंगा-घाट के समीप हुई थी। मृत्यु के बाद उनकी चिता के स्थान पर एक शिव मंदिर की स्थापना की गई, जो अभी भी वहाँ है।

कवि विद्यापति पूर्वजों के संस्कार, वातावरण और अध्यवसाय के बल पर साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए। संस्कृत तत्कालीन भारत की प्रमुख तथा अक्षुण्ण भाषा थी। विद्यापति संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान थे। किंतु

विद्यापति ने सामान्य जनता को लोकभाषा में लिखित रचनाएँ ही आकृष्ट करती हैं कहकर अवहट्ट और मैथिली भाषा में साहित्य सर्जन किया। साथ ही तत्कालीन कवियों की लोकभाषा के प्रति अवहेलना की दृष्टि को एक नई दिशा प्रदान की। मैथिल कोकिल विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषाओं में अपनी साहित्य रचनाएँ कर भारतीय साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि की। असाधारण प्रतिभासम्पन्न तथा बहुभाषाविद कवि विद्यापति ने संस्कृत में कुल तेरह (भूपरिक्रमा, पुरुष परीक्षा, लिखनावली, शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण संग्रह, गंगावाक्यावली, विभागसार, दान वाक्यावली, दुर्गाभक्तितरंगिनी, गयापत्तलक, वर्षकृत्य, मणिमंजरी, गोरक्ष विजय), अवहट्ट में दो (कीर्तिलता और कीर्तिपताका) और मैथिली में एक (पदावली) रचनाएँ कीं। विद्यापति रचित प्रत्येक रचना का ही अपना निजी महत्त्व है, किंतु 'पदावली' उनकी अक्षय कृति है।

मध्य काल में असम के अन्याय, अनीति तथा अशांतिकर परिवेश में शंकरदेव का जन्म हुआ था। असम के धर्म, समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य के लिए शंकरदेव का प्रादुर्भाव एक उल्लेखनीय घटना रही। शंकरदेव के विषय में प्राप्त अंतःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के आधार पर यह निश्चित होता है कि उनका जन्म बरदोवा के आलिपुखुरी में सन् 1449 ई. अर्थात् 1371 शक में हुआ था। शंकरदेव के पिता शिरोमणि भूञाँ के वंशज कुसुम्बर भूञाँ और माता सत्यसंध्या थी। शंकरदेव के जन्म के तीन दिन बाद ही माता सत्यसंध्या की और सात वर्ष की अवस्था में पिता कुसुम्बर भूञाँ का देहांत हुआ। इस कारण टुअर शंकर को दादी खेरसुती ने ही पाल-पोष कर बड़ा किया। बारह वर्ष तक शंकरदेव ने खेल-कूद में बीता दी। तब चिंतित दादी खेरसुती ने भाद्र महीने के एक गुरुवार को शुभ क्षण देखकर महेन्द्र कंदलि के टोल में विद्यार्जन के लिए पोता शंकर को ले गई। टोल में गुरु से केवल स्वरवर्ण और व्यंजनवर्ण सीखकर ही शंकरदेव ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय '0करतल कमल कमलदल नयन' नामक कविता की रचना करके दी। शंकरदेव को 'देव' उपाधि उनके असाधारण प्रतिभा देख उनके गुरु ने दी थी। इस नाम से ही वे आज जाने जाते हैं। शंकरदेव अध्यवसायी थे। वे व्याकरण, कोश, पुराण, रामायण, महाभारत, चारों वेद, चौदह शास्त्र, काव्य, इतिहास

इत्यादि का अध्ययन कर महामंडित बन गए। योगशास्त्र में भी वे निपुण थे। शिक्षा पूर्ण करने पर शंकरदेव का पहला विवाह हरिवरगिरि भूञाँ की कन्या सूर्यवती से संपन्न हुआ। किंतु मनु नामक कन्या को जन्म देकर ही सूर्यवती परलोकगामी हुई। शंकरदेव का दूसरा विवाह उनके पहली बार देशाटन से लौटने पर आत्मीय स्वजनों ने कालिका भूञाँ की कन्या कालिन्दी देवी से करा दिया। कालिन्दी देवी से उन्हें-रामानंद, कमललोचन, हरिचरण और रुक्मिणी नामक चार संतानें हुईं। शंकरदेव एक आदर्श गृहस्थ थे। सांसारिक बंधन में बंधने के बावजूद वे लोकहितार्थ वैष्णव भक्ति प्रचार कार्य तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्य में जुटे रहे। इसी कारण असमीया जनमानस में वे महापुरुष, सर्वागुणाकार, जगतगुरु आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत ही शंकरदेव ने 'शिरोमणि भूञाँ' का दायित्यभार संभाला। पैतृक विषय राज्यकार्य को संतुलित रूप से निर्वाह करने के साथ सामाजिक कल्याण कार्य और आध्यात्मिक चिंता चर्चा भी शंकरदेव ने समानांतर ही जारी रखा। वर्ग-भेद, नारी उत्थान तथा समन्वयवाद पर शंकरदेव ने बल दिया। अपने साथियों के साथ किए गए दो बार के देशाटन का शंकरदेव के ज्ञान, विचारधारा पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। तत्कालीन भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर उन्होंने विशाल भारतीय आत्मा को विष्णु-कृष्ण की विराटता एवं सर्वशक्तिमान रूप में पहचाना और वे असम में नववैष्णव धर्म का प्रवर्तन कर 'एकशरण हरिनाम धर्म' का प्रचार करने लगे। अशांतिमय और संघर्षशील कर्म जीवन में शंकरदेव प्रारंभ में बरदोवा, फिर धुँवाहाटा और अंत में पाटबाउसी में निवास करते रहे। उन्होंने जनहितार्थ नामघरों तथा सत्रों की स्थापना की, विभिन्न वाद्ययंत्रों का निर्माण किया तथा भाउना का प्रदर्शन कर वाद्य-नृत्य-अभिनय कौशल पर जोर देकर असमीया लोगों को इसके प्रति ध्यानाकर्षित किया। साथ ही असमीया संस्कृति का नवोत्थान भी किया। जीवन के अंतिम समय में शंकरदेव कोचबिहार में रहने लगे थे। तभी शरीर के एक अंग विशेष में निकले एक फोड़ा की असहनीय पीड़ा के कारण सन् 1568 ई. के सितम्बर या 1490 शक भाद्र शुक्ल सप्तमी के गुरुवार के दिन प्रायः एक सौ बीस वर्ष की आयु में शंकरदेव का कोचबिहार में देहावसान हुआ था। उनका अंतिम संस्कार तोरोचा नदी के किनारे सम्पन्न किया गया।

बहुमुखी प्रतिभासंपन्न शंकरदेव केवल धर्मप्रचारक ही नहीं, वे एक ही साथ कवि, गद्यकार, चित्रकार, नाट्यकार, संगीतकार, वाद्यकार, अनुवादक, अभिनेता तथा समाज के हितचिंतक थे। नववैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार तथा असमीया समाज का हितोद्धार के उद्देश्य को सफल करने हेतु उन्होंने अपने साहित्य को माध्यम बनाया। अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर विपुल साहित्य सम्भार की रचना कर असमीया साहित्य का भण्डार समृद्ध किया। तत्कालीन भारत की तरह असम में भी संस्कृत भाषा का ही वर्चस्व था। किंतु संस्कृत सामान्य जनता के लिए बोधगम्य न होने की स्थिति को शंकरदेव ने भलिभांति समझा और असमीया में साहित्य सर्जन कर महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया। साथ ही असमीया और मैथिली भाषाओं को मिश्रित कर ब्रजावली (ब्रजबुलि) भाषा में बरगीत और नाटक लिखकर राष्ट्रीय भावबोध को क़ायम रखते हुए भारत को जोड़ने का भी प्रयास किया। शंकरदेव के साहित्य भण्डार को भाषिक दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं- असमीया, ब्रजावली और संस्कृत। असमीया में- भक्ति प्रदीप, हरिश्चन्द्र उपाख्यान, रुक्मिणीहरण काव्य, गुणमाला, भागवत (अनूदित), उत्तराकाण्ड रामायण एवं कीर्तन-घोषा हैं। ब्रजावली में- बरगीत और छः नाटक (पत्नीप्रसाद नाट, कालियदमन नाट, केलिगोपाल नाट, रुक्मिणीहरण नाट, पारिजात हरण एवं रामबिजय) और संस्कृत में उनकी तीन- भक्ति रत्नाकर, टोटय और भटिमा हैं। शंकरदेव द्वारा रचित सभी कृतियाँ अपना निजी महत्त्व रखती हैं। किंतु कीर्तन-घोषा शंकरदेव की अमर कृति है। असमीया साहित्य तथा असम के भक्तवत्सल समाज में कीर्तन-घोषा का स्थान अप्रतिम तथा अद्वितीय है।

अतः निष्कर्ष रूप में विद्यापति और शंकरदेव क्रमशः हिन्दी एवं असमीया साहित्य जगत के दो प्रमुख हस्ताक्षर हैं। दोनों का ही विशिष्ट व्यक्तित्व रहा है, साथ ही उनके कृतित्व उन्हें सदैव अमर बनाए रखेंगे।

संदर्भ-ग्रंथसूची

असमीया

नेओग, महेश्वर. *श्रीश्रीशंकरदेव.* अष्टम. गुवाहाटीः चंद्र प्रकाशन. 2006.

बायन, भवजित. *सर्वभारतीय भक्ति आंदोलन आरू शंकरदेवर कीर्तन-घोषा.* प्रथम. गुवाहाटीः पाहि प्रकाशन.2014.

भकत, द्विजेंद्रनाथ. *कीर्तन एक समीक्षात्मक आलोचना.* तृतीय. गुवाहाटीः चन्द्र प्रकाशन. 2007.

रायचौधरी, भूपेन्द्र. *श्रीमंत शंकरदेवः व्यक्तित्व एवं कृतित्व.* प्रथम. गुवाहाटीः श्रीमंत शंकरदेव संघ. 2002.

लेखारू, उपेन्द्र चंद्र (संपा). *कथा गुरुचरित्र.* पंचम. गुवाहाटीः 2006.

शर्मा, नवीनचंद्र. *पुरणि असमीया साहित्यर सुवास.* प्रथम. गुवाहाटीः वाणी प्रकाशन. 1988.

हिन्दी

कपूर, शुभकार. *विद्यापति की पदावली.* प्रथम. लखनऊः भारती प्रकाशन. 1968.

दीक्षित, आनंदप्रकाश. *विद्यापति पदावली.* साहित्य प्रकाशन मंदिर. ग्वालियर.

बेनीपुरी, रामवृक्ष. *विद्यापति पदावली.* पंचम. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन. 2011.

मिश्र, खगेंद्रनाथ. मजुमदार, विमानबिहारी. *विद्यापति.* कोलकाता. विशाल भारत बुक डिपो. 1951.

यादव, लालसा. *विद्यापति का काव्य और काव्यभाषा.* हिन्दी परिषद प्रकाशन. हिन्दी विभाग. इलाहाबाद विश्वविद्यालय.

शील, शेखरज्योति. *विद्यापति विवेचन.* प्रथम. गुवाहाटीः विजय भारती प्रकाशन.2007.

वैबसाइट

आलेख, शंकरदेव 20 December 2020 https://hi.m.wikipedia.org>wiki